भाव-सारो

(भाव सार)

मंगल आशीर्वाद :

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती
श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

लेखक :

आचार्य वसुनंदी मुनि

ग्रंथ : भाव-सारो (भाव सार)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्व नंदिनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2025)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : **978-93-94199-55-2**

मूल्य : **₹52/-** (Not for Sale)

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

प्राप्ति स्थल : C/117, बेसमेंट, सेक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

संपादकीय

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण॥6॥

हे पथिक! प्रथम भावको जानो। भाव रहित लिङ्गसे तुम्हारा क्या प्रयोजन? प्रयत्नपूर्वक भावको ही शिवपुरका पन्थ जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा गया है।

—(आ. श्री कुन्दकुन्दस्वामी, भावपाहुड़)

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण॥48॥

मुनि भावसे जिनलिङ्गी होता है, द्रव्य मात्रसे जिनलिङ्गी नहीं होता इसलिए भावको धारण करो। मात्र द्रव्यलिङ्गसे क्या कर सकते हैं?

सुमनोंका सौन्दर्य व सौरभ, जलकी शीतलता, फलोंकी मधुरता, वैश्वानरकी ऊष्णता, दीपवर्तिकाकी ज्योति इन सभीमें क्रमशः प्राणरूपसे विद्यमान रहती है। इन विशेषताओंके बिना इन वस्तुओंका अस्तित्व ही असम्भव है उसी प्रकार किसी भी द्रव्यमें द्रव्यकी द्रव्यताको स्थायित्व देने वाला उसका भाव होता है। भावोंके बिना द्रव्य अर्थहीन है, निर्मूल्य है तथा उस द्रव्यके बिना भावका अस्तित्व ही असम्भव है। जैसे किसी प्राणीके पास द्रव्येन्द्रियोंके बिना (पौद्गलिक संरचना) भावेन्द्रियाँ (ज्ञानवरणी, वीर्यान्तरायका क्षयोपशम)

सम्भव नहीं है उसी प्रकार द्रव्य भेषके बिना तदनुरूप अविनाभावी रूपसे रहने वाले भाव भी असम्भव हैं और भावोंसे रहित वह द्रव्य भी अन्यतर संज्ञा, लक्षण, विशेषणों आदिको प्राप्त होता है।

आत्महितके लिए प्रशस्त भावोंकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी धातुओंकी मलिनताको नष्ट करनेके लिए प्रज्ज्वलित अग्निकी, जलके वाष्पीकरणके लिए ऊष्णताकी अथवा वृक्षोंके सम्वर्द्धनके लिए समुचित उर्वरा, मिट्टी, खाद, जल प्राणवायु व प्राकृतिक प्रकाशकी भी। यह कहना भी उचित ही है कि बिना भावोंके जिनशासनका अस्तित्व आकाश-पुष्प वा खरविषाणोंकी तरह अशक्य है।

प्रज्ञ पुरुष वा आत्महितार्थी सज्जन जो भी पुरुषार्थ करते हैं वा जितनी भी योगत्रयकी क्रियाएँ सम्पन्नकी जाती हैं उन सबका प्रयोजन भाव विशुद्धि ही है। उचित ही है, जो मार्ग यथेष्ट मञ्जिलको प्राप्त न कराए वह मार्ग, सुमार्ग नहीं कहा जा सकता। जिस बीजसे कहीं भी वृक्ष न हो सके उसे बीज नहीं कहते। जो जल अग्निको शमन न कर सके उसेकौन बुद्धिमान जल कहेगा। संसारके अधिकांश प्राणी आत्महितके लिए क्रियाएँ तो बहुत करते हैं किन्तु ऐसे प्राणी विरले हैं जो उन क्रियाओंमें निहित प्राण रूपी तद्भावोंसे युक्त हों।

अनेकबारका पुरुषार्थ करने पर भी अनेक व्यक्ति अपनी साधनाके प्रति फलस्वरूप साध्य व सिद्धिको प्राप्त क्यों नहीं कर पाते, उसका मुख्यकारण यही है कि उनमें उस

प्रकारके भावोंका अभाव है। जो दीपवर्तिका अन्धकार वा तमसमूहको विनष्ट करनेमें असमर्थ है क्या वह कभी समीचीन दीपवर्तिका हो सकती है? जो चेतना शरीरको जीवन्तता प्रदान न कर सके क्या वह प्राणीकी आकृति जीवन्त कही जा सकती है?

वर्तमानकालमें अधिकांश व्यक्ति बड़ी-बड़ी क्रियाओंको करनेमें बहुत आगे बढ़ रहे हैं, द्रव्य-क्रियाओंकी प्रतिस्पर्द्धा चल रही है किन्तु भावोंका ख्याल कितने लोगोंको है? भावोंकी पृष्ठभूमिके बिना द्रव्यक्रियायें आकाशमें मेघनिर्मित सुन्दर भवन, नगर, पर्वतोंके समान है वा मात्र दृष्टिगोचर होने वाले इन्द्रधनुषके समान हैं (जिससे युद्ध नहीं जीते जाते) अथवा मृगमरीचिका नदीमें चमकती जलका आभास कराने वाली बालूसे किसीकी तृष्णा शान्त नहीं होती उसी प्रकार विरहित क्रियाएँ किसी भी भव्यजीवको मोक्षमार्गी नहीं बना सकतीं।

जैन वाङ्मयमें लिखा है भव्यजीव मोक्ष प्राप्त करनेका अधिकारी है अभव्य नहीं। इसका आशय यह भी है कि भव्यजीव तदनुरूप-भावोंसे युक्त हो सकता है अभव्य नहीं। आप भी जानते हैं कि अभव्य मोक्षमार्गकी क्रिया तो कर सकता है किन्तु मोक्षमार्गी बन नहीं सकता।

परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी प्राकृतभाषाचक्रवर्ती आचार्य श्रीवसुनन्दी जी मुनिराजने सम्भव है इसीलिए इस 'भावसारो' ग्रन्थकी रचनाकी है। आचार्य भगवन् श्री

कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्य भगवन् श्रीदेवसेन स्वामी, आचार्य भगवन् वामदेवसूरी, आचार्य भगवन् श्रीश्रुत मुनिराज, आचार्य श्रीकुन्थुसागर इत्यादि आचार्यों ने भावों पर जोर देते हुए क्रमशः भावपाहुड़, भावसङ्ग्रह, भावसङ्ग्रह, भावत्रिभङ्गी, भावत्रयफलप्रदर्शी आदिका लेखन किया। आचार्य भगवन् कुमुदचन्द्रस्वामी जीका कल्याणमन्दिर स्तोत्रमें लिखित यह पद **''यस्मात् क्रिया प्रतिफलंति न भाव शून्याः''** जिसे आचार्यश्रीने हमें कई बार पढ़ाया। उसका चिन्तन करते हुए यह 'भावसारो' ग्रन्थ लिखाया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'भावसारो' उक्त ग्रन्थोंका साररूप दृष्टिगोचर होता है। यथार्थमें भावोंके बिना कोई भी क्रिया सम्यक् फलप्रदान करने वाली नहीं होती। इसीलिए आचार्य गुरुवर ने इस ग्रन्थमें भावों पर सटीक गाथाओंका प्रणयन किया है। जिससे भव्यजन भावोंके माहात्म्यका बोध प्राप्त कर मायाचार युक्त क्रियाओंसे उपेक्षाभाव रखकर पुण्यक्रियाओंका भावयुक्त सम्पादन कर सकें।

आचार्यश्रीकी लेखनक्षमता इस कालमें किसी आश्चर्यसे कम नहीं है। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य भगवन् श्री वीरसेनस्वामी जी ने लगभग 72000 श्लोक प्रमाण रचनाकी और वह भी 17 वर्ष चित्रकूट नामक स्थानपर ठहरकरके और उनकी वही कृति 'धवलाजी' आज शीर्षस्थ ग्रन्थोंमें परिगणित है। उनके इस कार्यके उपकारका ऋण यह सदी कभी नहीं चुका पाएगी। वे ग्रन्थ आज महाव्रतियोंकी विशुद्धिके उत्कृष्ट निमित्तमें परिलक्षित होते हैं।

इसी प्रकार आचार्यश्री वसुनन्दी जी गुरुदेव प्राकृतभाषामें निरन्तर ग्रन्थोंका प्रणयन कर जिनशासनके एवं विश्वसाहित्यके महत्वपूर्ण कीर्तिस्तम्भ स्थापित कर रहे हैं। प्रत्येक विषयमें आचार्य भगवन्का समानाधिकार वैसे ही है जैसे चक्रवर्तीका षट्खण्डों पर एक समानाधिकार होता है। तभी तो नवीन विषयोंपर आचार्यश्रीकी लेखनी सदैव प्रवर्तमान रहती है। कभी श्रावक-श्रमण आचार संहिता तो कभी सिद्धान्त, कभी व्याकरण तो कभी न्याय, कभी दर्शन तो कभी राष्ट्रहितार्थ वा विश्वशान्ति हेतु सूत्रोंका प्रतिपादन।

विभिन्न स्थानों पर विहार करते हुए तीर्थवन्दना, समाजोंको उद्बोधन, मार्गनिर्देशन, सङ्घसञ्चालन, तपस्या इत्यादिके साथ इतने ग्रन्थोंका लेखन उनके अथक मनोबल एवं जिनशासनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धाका प्रतीक है। जिस प्रकार आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी आदिके ग्रन्थ आज आत्महितार्थियोंके लिए वरदान स्वरूप हैं उसी प्रकार आचार्यश्री वसुनन्दी जी गुरुदेव द्वारा प्रणीत ये ग्रन्थ इस सदीके साथ आगे कई सदियोंके लिए वरदान स्वरूप, मोक्षमार्ग व आत्मशान्तिका मार्ग प्रदर्शित करने वाले होंगे।

आत्मशान्ति व जिनशासनप्रभावनाकी काङ्क्षा करने वाले आचार्य भगवन् श्रुतलेखनसे अपने दोनों ही लक्ष्योंको एक साथ साध रहे हैं। उनके द्वारा लिखित यह श्रुत अन्य भव्योंको भी निजलक्ष्य साधनेमें निमित्त होगा। इस पञ्चमकालमें आदर्शचर्याके धनी एवं विशाल श्रुतके ज्ञाता इन दोनों ही

विशेषताओंका आचार्यश्रीमें दृष्टिगोचर होना मणि-काञ्चन योगके समान ही है।

कहा जाता है कि विनम्रता व्यक्तिके विशाल व्यक्तित्वकी द्योतक है, आचार्य गुरुवरका यह मार्दवगुण सर्वविदित है। जिनशासनके प्रति उनकी निष्प्रमादी वृत्ति स्वयंमें एक उदाहरण है। विद्वत्जगत् जानता है कि पूज्य गुरुदेवके ग्रन्थोंका प्रकाशन आमन्त्रित विद्वत्गणके मध्य वाचना व मन्थन कर ही होता है जिसमें आचार्यश्रीकी गरिमामयी उपस्थितिमें विषयगत व भाषागत विद्वान् उनके चरणोंमें उपस्थित होते हैं एवं ग्रन्थ वाचनके मध्य अपने विचारों व जिज्ञासाओंको विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार इस बार भी सरधनामें कुछ आगामी प्रकाशित होने वाले ग्रन्थोंका वाचन हुआ जिसके मध्य प्राचार्य डॉ. अनिल भैया जी, डॉ. नरेन्द्रकुमार, डॉ. पुलक गोयल, डॉ. आशीष बमौरी जी व प्रतिष्ठाचार्य मनोज शास्त्री जी समुपस्थित थे। जिनवाणी धारामें अवगाहन करते हुए आचार्यश्रीके वात्सल्य और विद्वानोंकी विनययुत भक्तिका यह दृश्य भी हृदयको प्रफुल्लित करने वाला होता है।

आचार्य भगवन्के ग्रन्थके सम्पादनका कार्य मुझ अल्पज्ञके द्वारा किया गया है। यह लोकप्रसिद्ध है कि काँचखण्डपर मिहिरका प्रकाश उसे हीरेके समान दीप्तमान करता ही है। इस सम्पादनमें किञ्चित् भी प्रौढ़ता गुरुकी कृपादृष्टि है। और यदि प्रमादवश कोई त्रुटि रह गई हो तो नीर-क्षीर-विवेकी

हंसके समान गुणग्राहक दृष्टिसे ग्रन्थाध्ययन करते हुए विज्ञजन मुझे क्षमा करें।

ग्रन्थवाचनमें सहयोगी सभी विद्वत्गणों एवं मुद्रण-प्रकाशन आदिमें सहयोगी सभी महानुभावोंके लिए पूज्य गुरुदेवका शुभाशीष! आचार्य गुरुवरका उत्तम स्वास्थ्य हम सभीको वरदानके रूपमें प्राप्त हो, उनकी संयम-साधना, तपश्चर्या, ज्ञान इत्यादि शुक्लपक्षके शशधरके समान सदैव प्रवर्धमान व संवर्द्धित रहे। पुनः आचार्य भगवन् श्री वसुनन्दी जी गुरुवरके श्रीचरणोंमें सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु! ...

—आर्यिका वर्धस्वनन्दिनी

''भाव-सारो'' के प्रति मेरे भाव

अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी श्रमणकुल-तिलक पूज्य आचार्यश्री वसुनन्दी जी महाराजके भावोंका सुमधुर सुगन्धित सुन्दर पुष्प गुच्छ ही तो है भाव-सारो।

प्राकृतभाषाके प्रति अनन्य प्रेम और लगाव मुझे पूज्यश्रीके द्वारा सृजित ग्रन्थरत्नोंकी ओर आसानीसे आकर्षित करता है। सम्प्रति 'भावपाहुड'का स्वाध्याय कर रहा हूँ। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीके भावोंको वर्तमानमें यदि कोई शब्दोंमें पुनः प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहे हैं तो वे पूज्यश्री ही हैं। भावसारोकी कतिपय गाथाओंको बिना लेखकका नाम लिए यदि प्रस्तुत किया जावे तो बड़ेसे बड़े प्राकृत भाषाविद भी उस गाथासूत्रको सैकड़ों वर्ष प्राचीन कहनेके लिए विवश हो जायेंगे, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

प्राकृतभाषाकी सहज प्रस्तुति पूज्यश्रीकी सृजनशीलताके अविरल प्रवाहकी परिचायिका है। जैसा सरल और सहज पूज्यश्रीका व्यक्तित्व है, वैसा ही सरल और सहज पूज्यश्रीका प्राकृत साहित्य है। कोई पाण्डित्य प्रदर्शनका भाव नहीं, किसीको कुछ समझाना या चेताना नहीं। मात्र जिनवाणीकी श्रीवृद्धिके लिए सङ्कल्पित पूज्यश्रीकी प्रत्येक गाथा पुरातन आचार्योंकी स्मारिका सी लगती है।

भाव-सारोको निकटतासे महसूस करनेके बाद पाठक भी मेरे भावोंका समर्थन करेंगे। पूज्यश्रीने इस लघुकाय ग्रन्थराजमें मोक्षमार्गका सार ही मानो उद्घाटित कर दिया है।

''भावो य पढम-लिंगं'' (भावपाहुड, गाथा 02) आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीकी यह उक्ति भावसारोमें विश्लेषित हुई है। भावोंके बिना बाह्य क्रियाका महत्त्व नहीं है। भावोंकी निम्नस्तरीयता संसारमें भटकाती है। भाव, भावना, उपयोग, भावलिङ्ग, अन्तरङ्गका शुभ व शुद्ध विचार, अन्तरङ्गका परिणाम आदि जैनागमका सार तत्त्व समाया है इस महत्त्वपूर्ण प्राकृत रचनामें।

पूज्यश्रीकेद्वारा रचित यह आध्यात्मिक साहित्य श्रावकोंके लिए सम्पूर्ण प्राकृत जैनागमके अध्ययन हेतु अवश्य प्रेरित करेगा, यही भावना है। जैनआगमके सिद्धान्तोंकी सहज बोधगम्य प्रामाणिक प्रस्तुति प्रदान करनेके लिए पूज्य आचार्यवरके श्रीचरणोंमें सश्रद्ध अनेकों प्रणाम....

–डॉ. पुलक गोयल जबलपुर

महामंत्री, स्नातक परिषद

श्री दिगंबर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान,

सांगानेर, जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
1.	मङ्गलाचरण	1-14	1
2.	ग्रन्थ लेखन प्रतिज्ञा	15	4
3.	ग्रन्थ माहात्म्य	16-17	4
4.	भाव स्वरूप	18-19	5
5.	भावोंकी प्रधानता	20-21	5
6.	सभी जीवोंमें भाव	22-23	6
7.	भाव-कूटस्थ या स्थिर	24	6
8.	जीवके असाधारण भाव व भेद	25-26	7
9.	औपशमिक भाव	27	7
10.	औपशमिक भाव भेद व औपशमिक सम्यक्त्व लक्षण	28-29	8
11.	सादि व अनादि मिथ्यादृष्टिके उपशम सम्यक्त्व	30	8
12.	औपशमिक चारित्र लक्षण	31-33	9
13.	औपशमिक भावका काल	34	9
14.	क्षायिक भाव भेद	35	9

15.	क्षायिक भाव लक्षण	36	10
16.	क्षायिक सम्यक्त्वका लक्षण	37	10
17.	क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्तिके योग्यकौन	38	10
18.	क्षायिक सम्यक्त्व प्रतिष्ठापना व निष्ठापना कहाँ	39	11
19.	बारहवाँ गुणस्थान कब	40-42	11
20.	क्षपक व उपशम श्रेण्यारोहण किसके	43-44	12
21.	भावोंसे गुणस्थान	45	12
22.	भावोंसे श्रेण्यारोहण	46-48	13
23.	क्षयोपशम भाव	49	13
24.	क्षयोपशम भावके भेद	50-51	14
25.	क्षयोपशम सम्यक्त्वका लक्षण वकाल	52-53	14
26.	क्षायोपशमिक सम्यक्त्व व चारित्र कहाँ	54	15
27.	क्षायोपशमिक ज्ञान, अज्ञान, दर्शन व लब्धि कहाँ	55	15
28.	क्षायोपशमिक भाव कहाँ तक	56	16

29.	औदयिक भावके लक्षण व भेद	57-58	16
30.	गति भाव	59	17
31.	कषाय भाव	60	17
32.	लिङ्ग भाव	61-62	17
33.	मिथ्यात्व भाव	63	18
34.	अज्ञान भाव	64	18
35.	असिद्ध भाव	65	18
36.	असंयम भाव कहाँ	66	19
37.	लेश्या भाव	67	19
38.	पारिणामिक भाव	68-70	19
39.	सिद्धोंके भाव	71	20
40.	तीन प्रकारके भाव	72	20
41.	अशुभ भाव व उपयोग	73	21
42.	शुभ उपयोगका अभाव	74	21
43.	अशुभ भावसे जीव अशुद्ध	75	21
44.	शुभ योगमें अशुभ उपयोग	76	22
45.	अशुभ भाव स्थिति	77-78	22
46.	नरकमें शुभोपयोग	79	22
47.	अशुभ लेश्यासे दुर्गति	80	23

48.	दुर्भावोंसे पाप कर्मबन्ध	81	23
49.	मिथ्यादृष्टि	82	23
50.	शुभोपयोग कहाँ सम्भव नहीं	83-84	24
51.	अशुभ उपयोगके स्वामी	85-95	24
52.	अशुभ भाव दुर्गतिका हेतु	96	27
53.	आसुरी आदि भावोंसे दुःख	97-98	27
54.	अशुभोपयोग क्षयकेसे	99	28
55.	अशुभभाव त्याग हेतु पुरुषार्थ	100	28
56.	भव्योंको त्याज्य	101	28
57.	अशुभभाव सदा हेय	102	29
58.	अशुभोपयोग त्यागका उपदेश	103	29
59.	शुभोपयोगके स्वामी	104-130	29
60.	शुभोपयोग प्राप्ति	131-132	36
61.	शुभोपयोगके हेतु	133-134	36
62.	सम्यक्त्वका लक्षण	135	37
63.	व्रत पालन निर्देश	136	37
64.	कुलाचार व मर्यादा पालन	137	37
65.	तत्त्वचिन्तनका फल	138	37
66.	भावशून्य शुभ वेष भी निरर्थक	139	38

67.	शुभभाव-परमसमाधिकाकारण	140	38
68.	मैत्री आदि भावोंसे सुख	141	38
69.	बारह अनुप्रेक्षाओंका प्रभाव	142	39
70.	व्रतशुद्धि हेतु भावना आवश्यक	143	39
71.	सोलहकारण भावनाका फल	144	39
72.	भावसहित व्रतपालनका फल	145	39
73.	भावोंका भोजन पर प्रभाव	146	40
74.	द्रव्यसे नहीं, भावसे उपयोग	147-148	40
75.	शुद्ध भाव महत्ता	149-150	41
76.	शुद्धोपयोगके स्वामी	151-160	41
77.	शुद्धोपयोगीकी वन्दना	161	43
78.	शुद्धात्मध्यान प्रेरणा	162	44
79.	शुद्धोपयोगी मुनिदर्शन फल	163	44
80.	शुद्धोपयोग फल प्राप्त करने वाला	164	44
81.	अरिहन्त शुभ, अशुभ वा शुद्ध उपयोग रहित	165	45
82.	शुद्धोपयोग फल प्राप्तकर्ताकी वन्दना	166	45
83.	भाव द्रव्यसे प्रधान	167	45

84.	भावोंसे श्रेष्ठता	168	46
85.	अशुभ-भावोंसे शुभक्रिया भी दूषित	169	46
86.	तीव्रकषाययुक्त पापी	170	46
87.	जिनशासनका सार	171	46
88.	विशुद्धभावहीन नैर्ग्रन्थ्य भी सार्थक नहीं	172	47
89.	सुभावशून्य मोक्षमार्गी नहीं	173-174	47
90.	मूर्च्छा रहित चक्रीकी सुगति	175	48
91.	हिंसाभावयुक्त भी महापापी	176	48
92.	सुभाव भी पुण्यदायक	177	48
93.	पात्रदान अनुमोदनासे भोगभूमि	178	48
94.	भावोंका प्रभाव	179-199	49
95.	संक्लेशतम दया तीर्थङ्कर प्रकृतिबन्धका कारण	200-205	54
96.	निदान रहित पुण्य मोक्षकारक	206	55
97.	मिथ्यादृष्टिका पुण्य भी भवकारक	207	55
98.	भावोंका माहात्म्य	208	56
99.	जैसे भाव, वैसा फल	209	56
100.	किन भावोंसे कैसे फलकी प्राप्ति	210	56

101.	शुद्ध भाव ही मोक्षकारक	211	56
102.	किन भावोंसे कर्मक्षय	212	57
103.	भावोंको सम्भालना आवश्यक	213	57
104.	ममत्वभाव संसारका हेतु	214	57
105.	शुभ भावोंकी भावना	215	58
106.	भावोंको सम्भालना	216	58
107.	विशुद्ध-चित्तका ही कल्याण सम्भव	217	58
108.	भावोंकी प्रधानता	218	58
109.	एक ही निमित्तसे भिन्न-भिन्न भाव	219-220	59
110.	ग्रन्थ माहात्म्य	221	60
111.	ग्रन्थकारकी लघुता	222	60
112.	अन्तिम मङ्गलाचरण	223-226	60
113.	ग्रन्थ प्रशस्ति	227-228	61

भाव-सारो

(भाव सार)

मङ्गलाचरण

सुद्धसहावो जेहिं, पडिलंभिदो सगसुद्धभावेहिं।
ते णिक्कम्मा सिद्धा, णमामि लहिदुं सुद्धभावं॥1॥

जिन्होंने अपने शुद्ध भावों से शुद्ध स्वभाव को प्राप्त किया उन कर्मों से रहित सिद्धों को अपने शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति के लिए मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

असुहभावरहिदा जे, सुभावजुदा सुद्धभावं लहिदुं।
संलग्ग-सूरि-पाढग-मुणी थुवमि खयिदुं कुभावं॥2॥

जो अशुभ भाव से रहित हैं, शुभ भाव से युक्त हैं एवं शुद्ध भावों को प्राप्त करने में संलग्न हैं उन आचार्य, उपाध्याय व मुनिराजों की स्तुति, मैं कुभावों के क्षय के लिए करता हूँ।

अरिहादी परमेट्ठी, ताण बिंबाणि जिणभवणाणि थुवमि।
जिणागमं जिणधम्मं, पाविदुं सग-सासय-धम्मं॥3॥

अरिहन्त आदि पञ्च परमेष्ठी, उनके बिम्ब, जिनभवन, जिनागम व जिनधर्म की निज शाश्वत धर्म की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ।

पसत्थभावसंजुदं, बहुहा सुद्धभावजुत्तं णिच्चं।
सूरिं संतिसायरं, अप्पमत्त-चरिय-संजुत्तं॥4॥

पढमाइरियं च चरिय-चक्किं गम्भीरं दुद्धरतवसिं।
थुवमि मुणिपरम्पराइ, जीवण-दायगं भयवदोव्व॥5॥ (जुम्मं)

जो नित्य प्रशस्त भाव से युक्त थे, बहुधा शुद्ध भाव से युक्त रहा करते थे, जो लुप्तप्रायः मुनि परम्परा के लिए जीवन दायक थे, भगवान् के समान उन अप्रमत्त चारित्र से युक्त, गम्भीर, दुर्द्धर तपस्वी, चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज की मैं स्तुति करता हूँ।

तव-सिरोमणिं संजम-सम्मत्त-सण्णाणेहिं विसिट्ठं।
पणायार-परायणं, सिआवाय-केसरिं सूरिं॥6॥

गुणायारं वच्छलं आइरियं सिरीपायसायरं च।
तिविहकम्मं णासिदुं, परियंदामि अइभत्तीए॥7॥ (जुम्मं)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र से विशिष्ट, तप शिरोमणि, पञ्चाचार परायण, गुणों के आकर, वात्सल्य युक्त, स्याद्वाद केसरी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज को तीन प्रकार के कर्मों के नाश के लिए अतिभक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

धीर-वीर-गम्भीरं, पालिदुं दुविहसंजमं पवीणं।
संगहणुग्गह-कुसलं, सिस्साण पंचिंदिय-जेदुं॥8॥

सुद्धप्पज्झाणरदं, जयकित्ति-माइरियं दूरदिट्ठं।
णमामि तच्चचिंतगं, सय सगायार-विसुद्धीए॥9॥ (जुम्मं)

धीर, वीर, गम्भीर, दोनों प्रकार के संयम पालन करने में प्रवीण, शिष्यों के सङ्ग्रह-अनुग्रह में कुशल, पञ्चेन्द्रिय विजेता, शुद्धात्मध्यान में रत, दूरदृष्टा, तत्त्वचिन्तक आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज को निज आचार की विशुद्धि के लिए सदैव नमस्कार करता हूँ।

भारदगोरवं महा-भूसणमुक्किट्ठं च देसस्स सय।
जुगदिट्ठं जिणसासण-उण्णदि-कारगं पसंतं च॥10॥

चउविह-संघणायगं, अच्चंत-भद्दपरिणाम-सहिदं च।
सूरिं देसभूसणं, णमामि लहिदुं सयलणाणं॥11॥ (जुम्मं)

युगदृष्टा, जिनशासन उन्नतिकारक, प्रशान्त, चतुर्विध सङ्घनायक, अत्यन्त भद्र परिणाम से सहित, देश के महा आभूषण स्वरूप भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को सकलज्ञान अर्थात् केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।

सुगुरुं जिणसासणस्स, परमपहावगं सय तित्थयरोव्व।
सिदपिच्छधारगं सिद्धंतचक्किं रट्ठसंतं च॥12॥

खवगरायसिरोमणिं, उक्किट्ठ-सल्लेहणा-धारगं च।
सूरिं विज्जाणंदं, थुवमि लहिदुं विज्जाणंदं॥13॥ (जुम्मं)

तीर्थङ्कर के समान जिनशासन के परम प्रभावक, श्वेतपिच्छीधारक, उत्कृष्टसल्लेखना धारक, क्षपकराज

शिरोमणि, सिद्धान्तचक्रवर्ती, राष्ट्रसन्त आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज की विद्या के आनन्द की प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ।

सग-भाव-विसुद्धीए, परम-विसुद्धभावसहिद-गुरुणो य।
धरिय चित्ते पणमामि, डज्झेदुं अट्ठविहकम्मं॥14॥

परम विशुद्ध भाव सहित गुरुओं को अपने चित्त में धारण कर उन गुरुओं को अपने अष्टकर्मों के नाश के लिए निज भावों की विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ लेखन प्रतिज्ञा

गंथिमं भावसारं, वोच्छामि सव्वभावविसुद्धीए।
लहिदुं भावा अलेस्स-अकम्म-अकसाय-जीवाणं॥15॥

लेश्या रहित, कर्म रहित व कषाय रहित जीवों के भावों की प्राप्ति के लिए अपने भावों की विशुद्धिपूर्वक 'भावसार' नामक इस ग्रन्थ को कहता हूँ।

ग्रन्थ माहात्म्य

जह तह णिग्गंथदा हु, आइरिय-उवज्झाय-साहूणं च।
तित्थपइडी तित्थाण, भावसारो अप्पसुद्धीइ॥16॥

जिस प्रकार आचार्य, उपाध्याय व साधुओं के लिए उनकी निर्ग्रन्थता एवं तीर्थङ्करों के लिए तीर्थङ्कर प्रकृति है, उसी प्रकार आत्मशुद्धि के लिए यह 'भावसारो' नामक ग्रन्थ है।

जंति चेयण-पदेसे, भावा खलु परिणदी चेयणाए।
मणे णो णिप्पज्जंति, जं भावा सव्वजीवेसुं॥17॥

चेतना की परिणति ही भाव है। वे भाव चेतन प्रदेश में उत्पन्न होते हैं। वे मन में उत्पन्न नहीं होते क्योंकि भाव (संज्ञी, असंज्ञी, न संज्ञी न असंज्ञी) सभी जीवों में होते हैं।

भाव स्वरूप

असण्णी-जीवेसुं पि, भावा होंति णियमादु सव्वदा हि।
अप्पपरिणदी भावो, अहवा चेयण-पज्जाओ वि॥18॥

असंज्ञी जीवों में भी नियम से सर्वदा ही भाव होते हैं। आत्मा की परिणति भाव है अथवा चेतना की पर्याय भी भाव है।

मणे रोहदि वियारं, तच्च-अतच्च-चिंतणं वा तादो।
जोगपवित्ती कयाइ, भावणिमित्तं णेव भावो॥19॥

मन में विचार उत्पन्न होता है। उससे तत्त्व वा अतत्त्व चिन्तन उत्पन्न होता है। योगों की प्रवृत्ति कदाचित् भावों में निमित्त है किन्तु वह भाव कदापि नहीं है।

भावों की प्रधानता

ण दव्वकिरिया महच्च-संजुदा पाणोव्व भावेहि विणा।
भावेण विणा जीवो, चेयणं जीवत्तसत्तीव॥20॥

जो भाव क्रियाओं में प्राण के समान माने जाते हैं उन भावों के बिना द्रव्यक्रिया महत्त्वयुक्त नहीं है। जैसे—चेतना

के बिना जीवत्वशक्ति असम्भव है, उसी प्रकार भाव के बिना जीव का अस्तित्व असम्भव है।

भाव-पहावो अहियो, सद्दादो चिय सव्वदा सव्वत्थ।
भावविहीणो सद्दो, बंझाए दु रमणकिरिया व॥21॥

सर्वदा व सर्वत्र शब्दों से अधिक भावों का प्रभाव होता है। भाव से विहीन शब्द बन्ध्या की रमणक्रिया के समान निष्फल वा अर्थहीन हैं।

सभी जीवों में भाव

रयणायरे रयणं व, अक्के पगासोव्व सुमे सुरहीव।
सुहायरम्मि जुण्हा व, भावो सव्वेसु जीवेसुं॥22॥

जैसे रत्नाकर में रत्न होते हैं, सूर्य में प्रकाश होता है, पुष्प में सुगन्ध होती है और चन्द्रमा में चाँदनी होती है उसी प्रकार सभी जीवों में भाव होते हैं।

जह पवण-पहावेणं, उप्पज्जंति कल्लोला तडागे।
जोगाइ-णिमित्तेणं, तह हाणि-विड्ढि-रूव-भावा॥23॥

जैसे वायु के प्रभाव से सरोवर में तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, वैसे ही योगादि का निमित्त पाकर संसारी जीवों के सदा हानि-वृद्धि रूप भाव होते हैं।

भाव-कूटस्थ या स्थिर

छउमत्थ-भावा णेव, कूडत्था गदरायीणं थिरा दु।
णो कम्मरहिदेसु सा, जा हाणि-विड्ढी सकम्मेसु॥24॥

छद्मस्थ के भाव कूटस्थ नहीं होते और वीतरागियों के भाव स्थिर होते हैं (किन्तु परिणमन सदैव होता है)। कर्म रहित जीवों में भावों की वह (परिणमन) हानि-वृद्धि नहीं होती जो हानि-वृद्धि कर्म सहित जीवों में होती है।

जीव के असाधारण भाव व भेद

सेट्ठ-असाहारण-भावा विसिट्ठ-परिणदीए जीवस्स।
णेव कयावि संभवा, अण्णपोग्गलाइ-दव्वेसुं।।25।।

जीव की विशिष्ट परिणति से जीव के श्रेष्ठ असाधारण भाव होते हैं। वे जीव के असाधारण भाव अन्य पुद्‍गलादि द्रव्यों में कदापि सम्भव नहीं हैं।

उवसमिय-खओवसमिय-खइयोदइय-पारिणामिग-भावा।
ताण तेवण्ण-भेया, जाणेज्जा जिणागमेणं च।।26।।

जिनागम से औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक व पारिणामिक ये पाँच भाव जानने चाहिए, उनके कुल तिरेपन भेद हैं।

औपशमिक भाव

कम्माण-मुवसमादो, जे भावा ते उवसमिया मेत्तं।
उवसमो सक्को मोहणिज्जस्स दु सव्वपइडीणं।।27।।

जो भाव मात्र कर्मों के उपशम से होते हैं, वे औपशमिक भाव जानने चाहिए। मोहनीय की सर्व प्रकृतियों का ही उपशम शक्य है।

औपशमिक भाव भेद व औपशमिक सम्यक्त्व लक्षण

बेविहं मोहणिज्जं, उवसमिय-भावो अवि बेविहो तं।
दंसणमोहस्स मिच्छ-मिस्स-सम्मत्त-पइडीणं च॥28॥

तेहि सह चउ-अणंताणुबंधिकसाय-उवसमादो तहा।
उवसम-सम्मत्तं सय, णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं॥29॥ (जुम्मं)

मोहनीय कर्म दो प्रकार का है—दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय। अतः औपशमिक भाव भी दो प्रकार है—औपशमिक सम्यक्त्व व औपशमिक चारित्र। दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक् प्रकृति और उनके साथ चार अनन्तानुबन्धी कषाय के उपशम से उपशम सम्यक्त्व होता है, ऐसा जिनेन्द्रों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

सादि व अनादि मिथ्यादृष्टि के उपशम सम्यक्त्व

सादि-मिच्छो लहदि उवसमादो वा पण-छ-सत्तपइडीण।
अणादी पणपइडीण, कइवयणुसारेण सत्ताण॥30॥

सादि मिथ्यादृष्टि जीव पाँच, छह या सात प्रकृतियों व अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व के साथ चार अनन्तानुबन्धी कषायों इन पाँच प्रकृतियों के और कुछ आचार्यों के अनुसार सात प्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

औपशमिक चारित्र लक्षण

अणंताणुबंधि-रहिद-ति-अप्पच्चक्खाण-कसायादीण।
कोह-माण-जिम्ह-लोह-कसायबारसेहि सहिदाण॥31॥

हस्स-पेम्म-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ-थी-पुं-संढवेदाण।
चरियमोहस्स कमसो, इगवीसपइडीणुवसमादु॥32॥

उवसमिअ-चरियं सया, उवसम-सेढी-आरोहगाणं दु।
पुण्णभवेसु चउवार-मेगभवे चडेज्ज दुवारं॥33॥ (तियं)

चारित्र मोहनीय के अनन्तानुबन्धी कषाय से रहित तीन अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व सञ्ज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इन बारह कषायों से सहित हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद व नपुंसकवेद क्रमशः इन इक्कीस प्रकृतियों के उपशम से उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होने वाले मुनिराजों के सदा औपशमिक चारित्र होता है।

औपशमिक भाव का काल

उवसमियभाव-यालो, अंतोमुहुत्तो णिच्च-सिद्धंतो।
सुद्ध-सहावो उवसम-भावो णो कयावि जीवस्स॥34॥

इस औपशमिक भाव का काल अन्तर्मुहूर्त है, यह नित्य सिद्धान्त है। औपशमिक भाव जीव का शुद्ध स्वभाव कदापि नहीं है।

क्षायिक भाव भेद

खइय-णाणं दंसणं, सम्मत्तं चरियं दाणं लाहो।
णवविहा खइय-भावा, भोगो उवभोगो वीरियं॥35॥

क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग व क्षायिक वीर्य ये नौ प्रकार के क्षायिक भाव हैं।

क्षायिक भाव लक्षण

णाणावरण-दंसणावरण-खयादो णाणं दंसणं च।
दाणाइ-खइय-भावा, दाणाइ-विग्घ-पइडि-खयादु॥36॥

ज्ञानावरण के क्षय से क्षायिक ज्ञान, दर्शनावरण के क्षय से क्षायिक दर्शन, दानादि अन्तराय कर्म प्रकृतियों के क्षय से दानादि क्षायिक भाव होते हैं। अर्थात् दानान्तराय के क्षय से क्षायिक दान, लाभान्तराय के क्षय से क्षायिक लाभ, भोगान्तराय के क्षय से क्षायिक भोग, उपभोगान्तराय के क्षय से क्षायिक उपभोग और वीर्यान्तराय के क्षय से क्षायिक वीर्य होता है।

क्षायिक सम्यक्त्व का लक्षण

मिच्छाइ-ति-पइडीणं, अणंताणुबंधि-चउक्क-खयादो।
भव्वुल्ला णियमादो, हवंति खइय-सम्मादिट्ठी॥37॥

मिथ्यात्व आदि तीन प्रकृतियों व अनन्तानुबन्धी चतुष्क (अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ) के क्षय से भव्य जीव नियम से क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य कौन

खइय-सम्मत्तं वज्ज-उसह-संघडण-जुदो णिअड-भव्वो।
पाउणेदुं समत्थो, केवलिदुगपादमूले वा॥38॥

वज्रवृषभनाराच संहनन से युक्त निकटभव्य जीव केवली वा श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने में समर्थ होता है।

क्षायिक सम्यक्त्व प्रतिष्ठापना व निष्ठापना कहाँ

पट्ठिावणं करिदुं, समत्थो मेत्तं माणुस-गदीइ हि।
संभवो णिट्ठावणं, चदुगदीसुं सिद्धंतेणं।।39।।

क्षायिक सम्यक्त्व की प्रतिष्ठापना करने में जीव मात्र मनुष्यगति में ही समर्थ है। किन्तु सिद्धान्त से निष्ठापना चारों ही गतियों में सम्भव है।

बारहवाँ गुणस्थान कब

चरिय-मोहणिज्जस्स य, खयादो तह इगवीस-पइडीणं।
णिस्सेसमोहखयादु, खीणमोहो सय बारसमठाणं।।40।।

चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों के क्षय से सम्पूर्ण मोह के क्षय होने से क्षीणमोह नामक बारहवाँ गुणस्थान होता है।

बारसम-गुणट्ठाणे, णाण-दंसणावरणं खयिय रिसी।
विग्घकम्म-मणंतरं, जिणो सजोगकेवली होदि।।41।।

ऋषिवर बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में ज्ञानावरण व दर्शनावरण और अनन्तर अन्तराय कर्म क्षयकर सयोग केवली जिन होते हैं।

णव-खइयभावा सया, हवंति खलु अरिहंत-केवलीणं।
घाइकम्मक्खयेणं, विणा असंभवो णवलद्धी।।42।।

अरिहन्त केवली जिन के सदा नौ क्षायिक भाव ही होते हैं। घातियाकर्मों के क्षय के बिना नव क्षायिक लब्धि असम्भव है।

क्षपक व उपशम श्रेण्यारोहण किसके

विदियुवसम-सद्दिट्ठी, वा खइया चडंति उवसम-सेढिं।
उवसम-चरिय-धारगा, समणा णिच्चं परियंदामि।।43।।

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि वा क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी उपशम श्रेणी चढ़ते हैं। उपशम चारित्र के धारक श्रमणों को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

चडंते खवगसेढिं, खइयसम्मादिट्ठी मुणी मेत्तं।
खओवसम-सद्दिट्ठी, किण्णु णेव एगसेढिं अवि।।44।।

मात्र क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनिराज ही क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं। किन्तु क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि एक भी श्रेणी नहीं चढ़ते।

भावों से गुणस्थान

भावविसुद्धिबलेणं, मिच्छो हवेदि अप्पमत्त-समणो।
भावसंकिलेसेण वि, उवसंतादु मिच्छे पडेज्ज।।45।।

भावविशुद्धि के बल से मिथ्यादृष्टि अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती श्रमण हो सकता है और भावों की संक्लेशता से जीव उपशान्तमोह गुणस्थान से मिथ्यात्व में पड़ सकता है।

भावों से श्रेण्यारोहण

खइय-सम्मादिट्ठी दु, चडेदि खवग-सेढिं विसोहीए।
किण्णु उवसमसेढिं च, भाव-विसोहि-हीणत्तेणं॥46॥

क्षायिक सम्यग्दृष्टि भाव विशुद्धि से क्षपक श्रेणी चढ़ता है, किन्तु भाव विशुद्धि की हीनता से वह उपशमश्रेणी चढ़ता है।

विदियुवसम-सद्दिट्ठी, चंपिदु खवग-सेढिं असमत्थो।
सुहभावेहि समाहिं, कडुअ लहदि दिवं पुण मोक्खं॥47॥

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि क्षपक श्रेणी चढ़ने में असमर्थ होता है। वह शुभभावों से समाधि कर स्वर्ग पुनः मोक्ष को प्राप्त करता है।

खवगो तस्सिं भवे हि, उवसामग-खइय-सद्दिट्ठी किण्णु।
तम्मि तिदिये चदुत्थे, भवम्मि पावेदि णिव्वाणं॥48॥

क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ क्षपक मुनिराज उसी भव में मोक्ष प्राप्त करते हैं किन्तु उपशामक क्षायिकसम्यग्दृष्टि मुनिराज उसी भव में, तृतीय या चतुर्थ भव में निर्वाण प्राप्त करते हैं।

क्षयोपशम भाव

उदयाभाविखयादो, सदवत्था-समादु सव्वघादीण।
देसघादि-पइडीणं, उदयादु खओवसम-भावो॥49॥

सर्वघाति प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय व उन्हीं के सदवस्थारूप उपशम से एवं देशघाति प्रकृतियों के उदय से क्षयोपशम भाव होता है।

क्षयोपशम भाव के भेद

खओवसम-भावा चउणाणं तिअण्णाणं तिदंसणं च।
पणलद्धी सम्मत्तं, चरियं संजमासंजमो दु॥50॥

चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान), तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ज्ञान), तीन दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन), पाँच लब्धि (क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र व संयमासंयम ये क्षायोपशमिक भाव हैं।

अट्ठारस-विहा सया, इत्थं णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहि।
खओवसम-भावो णो, एगंदादु भव-सिव-हेदू॥51॥

इस प्रकार जिनवरेन्द्रों के द्वारा क्षयोपशम भाव अट्ठारह प्रकार के निर्दिष्ट किए गए हैं। यह क्षयोपशम भाव एकान्त से संसार व मोक्ष का हेतु नहीं हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्व का लक्षण व काल

छप्पइडीणं उदयाभाव-खयादो तह मोहणिज्जस्स।
सदवत्था-उवसमादु, सम्मत्तपइडि-उदयादो दु॥52॥

खओवसम-सम्मत्तं, छावट्टि-सायरो उक्कस्सेणं।
अंतोमुहुत्तस्स पुण, मिस्से संभवो छावट्टी॥53॥ (जुम्मं)

मोहनीय कर्म की छह प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय से, उनके सदवस्था रूप उपशम से एवं सम्यक् प्रकृति के उदय से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। इसका उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर है। अनन्तर अन्तर्मुहूर्त के लिए मिश्र में जाकर पुनः चतुर्थ गुणस्थान में छ्यासठ सागर व्यतीत करना सम्भव है।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व व चारित्र कहाँ

खओवसम-सम्मत्तं, चदुत्थादो अपमत्तविरदंतं।
संजमासंजमो पणमे, चरियं छट्ठ-सत्तमेसु॥54॥

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से अप्रमत्त विरत गुणस्थान तक पाया जाता है। संयमासंयम पाँचवें गुणस्थान में एवं क्षायोपशमिक चारित्र छठे व सातवें गुणस्थान में पाया जाता है।

क्षायोपशमिक ज्ञान, अज्ञान, दर्शन व लब्धि कहाँ

अण्णाणं मिस्संतं, चदुणाणं चदुत्थादु खीणंतं।
दंसण-मणुसारेणं, ताणं लद्धी बारसंतं॥55॥

तीन अज्ञान मिश्र गुणस्थान तक पाए जाते हैं। चार ज्ञान चौथे से बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान तक पाए जाते हैं। दर्शन उन ज्ञान के अनुसार (चौथे से बारहवें तक) और पञ्च लब्धि बारहवें गुणस्थान तक पायी जाती हैं।

क्षायोपशमिक भाव कहाँ तक

मिच्छत्तादो दु खीण-मोहंतं खओवसमियो भावो।
तादु उवरि ण संभवो, कम्मट्ठिदीव य सिद्धेसुं॥56॥

मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक ही क्षायोपशमिक भाव पाया जाता है। उससे ऊपर सयोग व अयोग केवली गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भाव उसी प्रकार सम्भव नहीं है जैसे सिद्धों में कर्मों की स्थिति।

औदयिक भाव के लक्षण व भेद

संभवो जो वि भावो, जीवेसुं उदयादो कम्माणं।
ओदइया भावा खलु, इगवीस-विहा मुणेदव्वा॥57॥

जीवों में जो भी भाव कर्मों के उदय से सम्भव हैं वे सभी औदयिक भाव कहलाते हैं। ये औदयिक भाव इक्कीस प्रकार के जानने चाहिए।

चदुगदी चदुकसाओ, तियलिंगं मिच्छत्तं अण्णाणं।
असंजमो य असिद्धो, छलेस्सा इत्थं जाणेज्जा॥58॥

चार गति (देव, मनुष्य, तिर्यञ्च व नरकगति), चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), तीन लिङ्ग (स्त्री, पुरुष व नपुंसक लिङ्ग), मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्ध एवं छह लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल) इस प्रकार औदयिक भाव के इक्कीस भेद जानने चाहिए।

गति भाव

गदिणामकम्मुदयादु, लहदि जीवो देव-णिरयाइगदिं।
संभवो हि समयेगे, उदयो सया एगगदीए॥59॥

गति नामकर्म के उदय से जीव देवगति, नरकादि गति को प्राप्त करता है। एक समय में सदा एक गति का उदय ही सम्भव है।

कषाय भाव

जीवाण चदुकसाओ, होज्जा कोहाइ-कसायुदयादो।
विणा कसायुदयेण ण, संभवो कसाओ कस्सिं वि॥60॥

क्रोधादि कषायों के उदय से जीवों की चार कषाय होती हैं। कषायों के उदय के बिना किसी में भी कषाय सम्भव नहीं है।

लिङ्ग भाव

वेदकम्मोदयादो, त्थी-पुरिस-संढ-लिंगं जीवाणं।
णवरि देहस्स चिण्हं, णामकम्मोदयादो हि सय॥61॥

वेद कर्म के उदय से जीवों के स्त्री, पुरुष व नपुंसक लिङ्ग होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि देह के चिह्न सदा नामकर्म के उदय से ही होते हैं।

वेदजण्ण-भावो खलु, त्थी-पुं-संढवेदुदयादो होज्ज।
मेहुणसण्णा तत्थ दु, उदयभावं विणा असक्का॥62॥

स्त्री, पुरुष व नपुंसक वेद के उदय से निश्चय से वेदजन्य भाव होते हैं, वहीं मैथुन संज्ञा होती है। औदयिकभाव के बिना यह मैथुन संज्ञा अशक्य है।

मिथ्यात्व भाव

मिच्छत्त-उदयादो दु, होदि मिच्छादिट्ठी मिच्छ-ठाणे।
गहीदागहीदो वा, पणहा एगंतादी तहा॥63॥

मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि होते हैं। यह मिथ्यात्व गृहीत व अगृहीत के भेद से दो प्रकार का है अथवा एकान्त आदि के भेद से पाँच प्रकार का है।

अज्ञान भाव

होज्ज अण्णाण-भावो, णाणावरणिज्जस्स य उदयादो।
खीणमोहे खयदि तं, णाणावरणिज्ज-खयादु पुण॥64॥

ज्ञानावरणी कर्म के उदय से जीव में अज्ञान भाव होता है। पुनः ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से क्षीणमोह गुणस्थान में वह अज्ञान भाव नष्ट होता है।

असिद्ध भाव

कम्मस्स इगपइडीइ, जावदु उदय-सत्त-बंधादी तह।
तावदु जीव-असिद्धो, सव्वकम्मविमुक्को सिद्धो॥65॥

जब तक कर्म की एक भी प्रकृति का उदय, सत्त्व व बन्ध आदि है तब तक जीव असिद्ध है। सर्व कर्मों से मुक्त जीव सिद्ध है।

असंयम भाव कहाँ

चरियमोहोदयादो, असंजम-भावो होज्ज णियमादो।
चदुत्थंत-मसंजमो, पणमे देसो पुणो सयलो॥66॥

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से नियम से असंयम भाव होता है। चतुर्थ गुणस्थान तक असंयमभाव होता है। पाँचवें में देशसंयम व पुनः आगे सकलसंयम होता है।

लेश्या भाव

कसायणुरंजिद-जोग-पवत्ती लेस्सा लिंपदे अप्पं।
विणा कसाय-जोगेहि, असक्का सा कम्मि वि जीवो॥67॥

कषायानुरञ्जित योग की प्रवृत्ति लेश्या है अथवा जो आत्मा का लिम्पन करती है, वह लेश्या है। कषाय व योग के बिना वह लेश्या किसी भी जीव में अशक्य है।

पारिणामिक भाव

जे भावा कम्माणं, होज्ज उदयाइ-अवेक्खाए विणा।
ते खलु पारिणामिया, तिविहा तिलोए तिक्काले॥68॥

जो भाव कर्मों के उदयादि की अपेक्षा के बिना होते हैं, वे निश्चय से पारिणामिक भाव हैं। तीन लोक व तीन काल में वे तीन प्रकार के ही हैं।

जीवत्तं सव्वाणं, एगो भव्वत्त-अभव्वत्तेसुं।
संसारीसुं सिद्धो, णो भव्वो ण अभव्वो किण्णु॥69॥

जीवत्व भाव सभी जीवों के होता है। संसारी जीवों में भव्यत्व व अभव्यत्व में से एक भाव होता है। किन्तु सिद्ध ना भव्य हैं और ना अभव्य।

सिद्धो होदुं सक्को, जो सो भव्वो य इदरो अभव्वो।
एगम्मि संसारिम्मि, सक्को दो पारिणामियो हि॥70॥

जो सिद्ध होने में शक्य है वह भव्य है, इसके इतर जो सिद्धपद प्राप्त करने में अशक्य है वह अभव्य है। एक संसारी जीव में दो पारिणामिक भाव ही सम्भव हैं। (पहला जीवत्व भाव एवं दूसरा भव्यत्व व अभव्यत्व में से एक)

सिद्धों के भाव

सिद्धाण णेव उवसम-ओदइया खओवसमिय-भावो य।
खइय-भावो जीवत्त-पारिणामियभावो हि सया॥71॥

सिद्धों के औपशमिक, औदयिक व क्षायोपशमिक भाव कभी नहीं होता। उनके सदा क्षायिक भाव और जीवत्व पारिणामिक भाव ही होता है।

तीन प्रकार के भाव

सुहो असुहो सुद्धो य, तिविह-भावो वण्णिदो जिणसमये।
इत्थं उवओगो अवि, तिविहो दु चरणाणुजोगम्मि॥72॥

जिनागम में तीन प्रकार के भाव वर्णित किए गए हैं– अशुभभाव, शुभभाव और शुद्धभाव। इसी प्रकार चरणानुयोग में तीन प्रकार के उपयोग भी वर्णित हैं–अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग व शुद्धोपयोग।

अशुभ भाव व उपयोग

मिच्छत्तादो दु मिस्स-गुणट्ठाणंतं च संविदिदव्वो।
तारतम्मेण णियमा, असुहभावो उवओगो वा॥73॥

प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से तृतीय मिश्र सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान तक नियम से तारतम्य से अशुभ भाव अथवा अशुभ उपयोग जानना चाहिए।

शुभ उपयोग का अभाव

सुहजोगो दु संभवो, इमेसु उत्तगुणट्ठाणेसु किण्णु।
णो उवजोगो भावो, उहयो असुहो सया णेयो॥74॥

इन ऊपर कहे गए आदि के तीन गुणस्थानों में शुभ योग तो सम्भव है किन्तु शुभ उपयोग व शुभ भाव कभी सम्भव नहीं है। इन तीन गुणस्थानों में उपयोग व भाव सदैव अशुभ ही जानना चाहिए।

अशुभ भाव से जीव अशुद्ध

मलेण मलिण-मट्टिआ-घडो णीर-खीर-पूरिदासुद्धो।
जह तह धारंतो णव-वत्थं पि असुद्धभावजुदो॥75॥

जिस प्रकार मल से मलिन मिट्टी का घड़ा यदि जल व दूध से भरा हुआ भी हो तो भी मलिन होता है उसी प्रकार अशुद्ध भावों से युक्त व्यक्ति नवीन वस्त्र को धारण करता हुआ भी अशुद्ध ही होता है।

शुभ योग में अशुभ उपयोग

तंब-भायणम्मि सुद्ध-तक्कं पि विसरूवे जह परिणमदि।
तह मिच्छादीसुं सुह-जोगे अवि असुहोवओगो॥76॥

जिस प्रकार ताम्बे के बर्तन में रखा शुद्ध छाछ भी विषरूप परिणमित हो जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में शुभ योग होने पर भी अशुभ उपयोग ही होता है।

अशुभ भाव स्थिति

मिच्छेसुं तिव्व-असुह-भावो संभवो तिव्व-कसायेण।
सासादणे मज्झिमो, जहण्ण-असुहो मिस्सेसुं च॥77॥

मिथ्यादृष्टि जीवों में तीव्र कषाय से तीव्र अशुभभाव सम्भव है, सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों में मध्यम एवं मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवों में जघन्य अशुभभाव सम्भव है।

मिच्छादु मिस्संतेसु, सुहलेस्सासु असुह-उवजोगो हि।
सुहुवजोगो किण्णु अवि, सद्दिट्ठीसु असुहलेस्सासु॥78॥

मिथ्यात्व गुणस्थान से मिश्र गुणस्थान तक में शुभलेश्या होने पर भी अशुभ उपयोग ही होता है किन्तु सम्यग्दृष्टियों में अशुभ लेश्या होने पर भी शुभ उपयोग ही होता है।

नरक में शुभोपयोग

णिरये चदुट्ठठाणे, सुह-उवजोगो असुहलेस्सा णवरि।
किण्णु अण्णगदीसु सुह-उवओगे सुहलेस्सा पाय॥79॥

नरकगति में चतुर्थ गुणस्थान में शुभ उपयोग होता है यद्यपि विशेषता यह है कि वहाँ अशुभ लेश्या ही होती है। किन्तु अन्य गतियों में शुभ उपयोग होने पर प्रायः शुभ लेश्या ही होती है।

अशुभ लेश्या से दुर्गति

मिच्छो दु किण्हाइ-तियलेस्सारूवभावं च कुव्वंतो।
लहदि दुग्गदिं कसायमंदत्तेण सुग्गदिं णियमा॥80॥

मिथ्यादृष्टि कृष्णादि तीन अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत लेश्या रूप भाव को करता हुआ दुर्गति को प्राप्त करता है एवं कषायों की मन्दता से नियम से सद्गति को प्राप्त करता है।

दुर्भावों से पाप कर्म बन्ध

मिच्छत्तविणाभावी, बंधदि सोलस-पइडिं कुभावेहि।
भावविसोहीए सद्दिट्ठी तित्थं पुण्णपइडिं॥81॥

मिथ्यादृष्टि जीव दुर्भावों से मिथ्यात्व के अविनाभावी सोलह प्रकृतियों का बन्ध करता है। जबकि भावविशुद्धिपूर्वक सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर वा अन्य पुण्य प्रकृतियों का बन्ध करता है।

मिथ्यादृष्टि

मिच्छत्तुदयादो मिच्छादिट्ठी होदि जीवो णियमेण।
कुदेव-कुसत्थ-कुधम्म-कुगुरुसु सद्दहदे जो सो॥82॥

मिथ्यात्व के उदय से जीव नियम से मिथ्यादृष्टि होता है अथवा जो मिथ्यात्व के उदय से कुदेव, कुशास्त्र, कुधर्म व कुगुरुओं पर श्रद्धान करता है वह मिथ्यादृष्टि है।

शुभोपयोग कहाँ संभव नहीं

असुह-उवजोगो हि सय, अणंताणुबंधि-कसायुदयादो।
आदि-ति-गुणट्ठाणेसु, णेव संभवो सुहुवजोगो॥83॥

अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सदा अशुभ उपयोग ही होता है। प्रारंभ के तीन गुणस्थानों में शुभ उपयोग कभी सम्भव नहीं है।

अणंताणुबंधी जहवि ण मिस्से तहवि तस्स वासणाइ।
सम्मत्तादो पडणे, ण सुहुवजोगो सिद्धंतेण॥84॥

यद्यपि मिश्र गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय नहीं होती तथापि उसकी वासना से या सम्यक्त्व से पतन होने पर वहाँ सिद्धान्त से शुभोपयोग नहीं होता।

अशुभ उपयोग के स्वामी

णिंदं उवसग्गं वा, करंताण जिणसुदणिग्गंथाणं।
णियमा असुहुवजोगो, कहं संभवो सुहो ताणं॥85॥

जिनेन्द्रदेव, जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ गुरुओं की निन्दा व उपसर्ग करने वालों के नियम से अशुभ उपयोग ही होता है। उनके शुभोपयोग कैसे सम्भव हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

तिव्वकसायुदयादो, कुणंति परणिंदं अप्पपसंसं।
णीयगोदबंधगा य, असुहुवजोगजुदपाविट्ठा॥86॥

जो तीव्र कषाय के उदय से परनिन्दा व आत्मप्रशंसा करते हैं वे पापिष्ठ नीच गोत्र के बन्धक, अशुभ उपयोग से युक्त होते हैं।

मिच्छाइ-उदयादु जो, कुणदि हिंसाइ-पाव-मसुहचेट्ठं।
तिव्व-असुह-भावेहिं, तस्स हवेदि असुहुवजोगो॥87॥

जो मिथ्यात्वादि के उदय से हिंसादि पापों को करता है, तीव्र अशुभ भावों से अशुभ चेष्टा करता है, उसके अशुभ उपयोग होता है।

धम्म-धम्मीण अवण्णवादं कुणदि वददि असच्चमसुहं।
ताणं किंत्तिं घाददि, जो सो असुह-उवजोगजुदो॥88॥

जो धर्म व धर्मात्माओं का अवर्णवाद करता है, असत्य व अशुभ बोलता है, उनकी कीर्ति का घात करता है वह अशुभ उपयोग से युक्त होता है।

जो सो णाणाइ-सम्मगुणा भत्ति-आदी पसत्थभावा।
उववासाइ-तवा वा, दूसदि असुहुवजोगजुत्तो॥89॥

जो ज्ञानादि सम्यक् गुण, भक्ति आदि प्रशस्त भावों को या अनशनादि तपों को दूषित करता है वह अशुभ उपयोग से युक्त है।

अट्टं रुद्दं झाणं, कुव्वेदि जो मिच्छाइ-उदयादो।
धम्मं सुक्कं झाणं, दूसदि सो असुह-उवजोगी॥90॥

जो मिथ्यात्व आदि के उदय से आर्त्त व रौद्र ध्यान करता है, धर्म व शुक्ल ध्यान में दोष लगाता है वह अशुभ उपयोगी है।

जिणस्स अवण्णवादं, चउविहसंघस्स तिव्वकसायेण।
कुणदि असुह-उवजोगी, णिरयाइ-दुग्गदिं पावेदि।।91।।

जो तीव्र कषाय से जिनेन्द्रप्रभु का, चतुर्विध सङ्घ का अवर्णवाद करता है वह अशुभ उपयोगी जीव नरकादि दुर्गति को प्राप्त करता है।

जेसुं पि णर-तिरियेसु, णिरयाउ-बंध-कारणं विज्जंति।
ते मिच्छजुदा सव्वा, असुह-उवजोग-जुदा णियमा।।92।।

जिन भी मनुष्य व तिर्यञ्चों में नरकआयु के बन्ध के कारण विद्यमान हैं वे सभी मिथ्यात्व से युक्त हैं और नियम से अशुभ उपयोग से सहित हैं।

तिव्वकसायजुदो बहु-आरंभे संगे सत्तवसणेसु।
पंचिंदिय-विसयेसुं, आसत्तो असुह-उवजोगी।।93।।

जो तीव्र कषाय से युक्त है, जो बहुत आरम्भ-परिग्रह में, सप्त व्यसनों व पञ्चेन्द्रिय विषयों में आसक्त है वह अशुभ उपयोगी है।

तिरिय-भवणत्तयाणं, अवत्थाणं कुभोग-भूमिजाण।
णियमा मिच्छाइजुदा, असुहउवजोगजुदा लहंति।।94।।

तिर्यञ्च, भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष), कुभोगभूमिजों की अवस्थाओं को नियम से मिथ्यात्वादि सहित व अशुभ उपयोग से युक्त जीव प्राप्त करते हैं।

ओरालिय-सरीरी दु, णराउं बंधंति असुहभावेहि।
वेगुव्विय-सरीरी य, सुहासुह-उवजोगेणं वा॥95॥

औदारिक शरीर वाले अशुभ भावों से मनुष्यायु का बन्ध करते हैं एवं वैक्रियक शरीर वाले शुभ वा अशुभ उपयोग से मनुष्यायु का बंध करते हैं।

अशुभ भाव दुर्गति का हेतु

अणत्थग-कज्जं असुह-चिंतणं धम्मविणासग-भावा य।
दुग्गदि-दुक्ख-कारणं, मणेज्ज असुहभावो णियमा॥96॥

अनर्थकारी कार्य, अशुभ चिन्तन, धर्म का विनाश करने वाले भाव नियम से अशुभ भाव मानने चाहिए। वे अशुभ भाव दुर्गति व दुःख का कारण हैं।

आसुरी आदि भावों से दुःख

आसुरि-सम्मोही-किव्विस-कंदप्प-गंधव्व-भावेसुं।
आभिजोग्ग-आदीसुं, रदो लहदि दुग्गदिं दुक्खं॥97॥

जो आसुरी, सम्मोही, किल्विष, कन्दर्प, गन्धर्व, आभियोग्य आदि भावनाओं में लीन रहता है वह दुःख व दुर्गति को प्राप्त करता है।

होज्ज सया णियमादो, असुहरूवं फल-मसुहजोगाणं।
असुह-उवजोगो हंदि, दुहसमुद्दो पावायरो य॥98॥

अशुभ योगों का फल नियम से सदैव अशुभ रूप ही होता है। अशुभ उपयोग निश्चय से दुःख का समुद्र व पाप का आकर होता है।

अशुभोपयोग क्षय कैसे

खयिदुं असुहुवजोगं, समेज्ज कसायं आसण्ण-भव्वा।
मिच्छत्तं अवि तहेव, जिणसुदसाहूण सण्णिहीइ॥99॥

अशुभ उपयोग के क्षय के लिए आसन्नभव्य जीवों को जिनदेव, शास्त्र व साधुओं की सन्निधि में कषायों का शमन करना चाहिए और उसी प्रकार मिथ्यात्व का भी शमन करना चाहिए।

अशुभ भाव त्याग हेतु पुरुषार्थ

दुग्गदिं दुरावत्थं, तिव्वदुहाणि णो कंखेसि जदि तो।
उज्झेज्ज असुहभावं, णिय-सुह-सेट्ठ-पुरिसट्ठेणं॥100॥

हे भव्य जीव! यदि तुम दुरावस्था, दुर्गति और तीव्र दुःखों की आकाङ्क्षा नहीं करते हो तो अपने श्रेष्ठ शुभ पुरुषार्थ से अशुभ भाव का त्याग करो।

भव्यों को त्याज्य

बुद्धीए तिजोगेहि, अप्पसुहाहिलासी णियड-भव्वा।
उज्झेज्ज असुहजोगं, मिच्छं अणंताणुबंधिं पि॥101॥

आत्मसुख के अभिलाषी निकटभव्य जीवों को तीनों योगों से बुद्धिपूर्वक अशुभयोग, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का भी त्याग कर देना चाहिए।

अशुभ भाव सदा हेय

सव्व-मसुहभावं सय, णिल्लुंछेज्ज लवणजुत्तखीरं व।
सक्कराजुदखीरं व, सुहभावा पडिगाहणीया।।102।।

सभी अशुभ भावों को सदैव उसी प्रकार छोड़ देना चाहिए जिस प्रकार नमकयुक्त दुग्ध को विवेकीजन छोड़ देते हैं। शर्करा से युक्त दुग्ध के समान शुभ भाव ग्राह्य हैं।

अशुभोपयोग त्याग का उपदेश

अहो आसण्ण-भव्वो!, जिण-उवदेसं धरेहि सगचित्ते।
लहहि सण्णाणं सव्व-असुह-उवजोगं उज्झित्ता।।103।।

हे आसन्न भव्य! सर्व अशुभ उपयोग का त्याग कर अपने चित्त में जिनेन्द्रप्रभु के उपदेशों को धारण करो और सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करो।

शुभोपयोग के स्वामी

अविरद-गुणट्ठाणादु, पमत्तंतं सया सुह-उवजोगो।
सुहुवजोगो सम्मत्त-देस-महव्वदेहिं सह जं।।104।।

अविरत गुणस्थान से प्रमत्त गुणस्थान तक सदैव शुभोपयोग होता है। क्योंकि सम्यक्त्व, देशव्रत व महाव्रतों के साथ शुभोपयोग होता है।

पिदरेण सह सिसू जह, अणाहो ण पदिणा सह त्थी विहवा।
तह सम्मादिट्ठी णो, असुह-उवजोग-जुदो कयावि॥105॥

जैसे माता-पिता के साथ शिशु अनाथ नहीं कहलाता, पति के साथ स्त्री विधवा नहीं कहलाती उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी अशुभ उपयोग से युक्त नहीं होता।

अविरद-सद्दिट्ठीणं, सुह-उवजोगो णेयो जहण्णेण।
मज्झेण देसवदीण, उक्कस्सेण पमत्त-मुणीण॥106॥

अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के जघन्य रूप से, देशव्रतियों के मध्यम व प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनियों के उत्कृष्ट रूप से शुभोपयोग जानना चाहिए।

अणंताणुबंधिस्स य, मिच्छस्स सम्ममिच्छ-उवसमादो।
णियमेण सुहुवजोगो, कयाइ असुहजोगम्मि सदि वि॥107॥

अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व के उपशम से कदाचित् अशुभ योग के होने पर भी नियम से शुभोपयोग होता है।

उवसम-सद्दिट्ठीणं, खओवसम-खइयाणं अवि अहवा।
सव्वदा सुहुवजोगो, अपच्चक्खाण-तिव्वुदये वि॥108॥

उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि वा क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के अप्रत्याख्यान के तीव्र उदय होने पर भी सर्वदा शुभोपयोग होता है।

**पणम-ठाणवत्तीणं, अपच्चक्खाण-कसाय-अणुदये वि।
कयाइ असुह-जोगम्मि, मज्झ-सुहुवजोगो जाणेज्ज॥109॥**

पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीवों के अप्रत्याख्यान कषाय का अनुदय होने पर कदाचित् अशुभयोग होने पर भी मध्यम शुभोपयोग जानना चाहिए।

**पावदि पमत्तठाणं, समणो ति-चदुक्क-कसाय-पसमादु।
संजलणतिव्वुदये वि, उक्किट्ठ-सुहुवजोगी सया॥110॥**

तीन चतुष्क अर्थात् अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान चतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) कषायों के प्रशमन होने से श्रमण प्रमत्तगुणस्थान प्राप्त करते हैं। वहाँ सञ्ज्वलन के तीव्र उदय होने पर भी श्रमण सदा उत्कृष्ट शुभोपयोगी होते हैं।

**थूलकोह-उवसमादु, जणिद-खमाभाव-जुदाण चित्तेसु।
पुण्णदा सुहभावाविरद-देस-पमत्तविरदाणं ॥111॥**

स्थूल क्रोध के उपशमन से उत्पन्न क्षमाभाव से युक्त जनों के चित्त में पुण्यदायक शुभ भाव होते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत व प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती जीवों के शुभ भाव होते हैं।

**पडण-कारणस्स चित्त-भूमीए कक्कसत्त-कारगस्स।
सद्दिट्ठीण तिव्वसुह-भावा थूलमाणुवसमादु॥112॥**

जो पतन का कारण है, चित्त की भूमि को कर्कश करने वाला है ऐसे स्थूल मान के उपशमन से सम्यग्दृष्टि जीवों के तीव्र शुभ भाव होते हैं।

मणविसुद्धि-णासगाइ, संकिलेसभावजणणी-थूलाइ।
सरल-सद्दिट्ठीण सुहुवजोगो माया-उवसमादु॥113॥

जो मन की विशुद्धि की नाशक है, संक्लेशभाव की जननी है ऐसी स्थूल माया कषाय के उपशमन से सरल सम्यग्दृष्टि जीवों के शुभोपयोग होता है।

रायदोसरूविंगालजणगस्स थूललोहपावगस्स।
उवसमादु सउचभाव-जुद-सद्दिट्ठीण सुहुवजोगो॥114॥

जो राग व द्वेष रूपी कोयले को उत्पन्न करने वाला है ऐसे स्थूल लोभ रूपी अग्नि के उपशमन से शौच भाव से युक्त सम्यग्दृष्टियों के शुभोपयोग होता है।

सव्वघादिकसाय-पसमादु जणिदखंतिपरिणामेहि सह।
वदीणं महव्वदीण, होज्जा सुहुवजोगो णियमा॥115॥

सर्वघाती कषाय के प्रशमन से उत्पन्न क्षान्ति परिणामों के साथ व्रती व महाव्रतियों के नियम से शुभोपयोग होता है।

पुज्जेसु विणय-वित्तिं, सगणिंदं कुणदि परगुणपसंसं।
जिणसुदणिग्गंथेसुं, सद्धावंतो सुहुवजोगी॥116॥

जो पूज्यजनों में विनयवृत्ति रखता है, अपनी निन्दा और दूसरों के गुणों की प्रशंसा करता है, जिनेन्द्रदेव, जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ मुनियों में श्रद्धावान् है, वह शुभोपयोगी है।

पंचिंदिय-विसयादो, विरत्तो धम्मी य सद्दिट्ठी जो।
तस्स सुहुवजोगो सो, सक्को सोसिदुं सगभवं च॥117॥

जो पञ्चेन्द्रिय के विषयों से विरक्त होता है, उस धार्मिक, सम्यग्दृष्टि जीव के शुभोपयोग होता है, वह अपने संसार को सुखाने में समर्थ है।

सद्दिट्ठी आसत्ता, पुण्णकज्जेसुं परमसद्धाए।
ता किरिया हि णिमित्तं, लहावेदुं सुह-उवजोगं॥118॥

जो सम्यग्दृष्टि जीव परम श्रद्धा के साथ पुण्यकार्यों में आसक्त रहते हैं, उनकी वे क्रियाएँ ही शुभोपयोग को प्राप्त कराने में निमित्त हैं।

इत्थी-भोयण-चोरिअ-रायकहादीदु सव्वविकहादो।
विरत्त-सद्दिट्ठीणं, हवेदि सव्वदा सुहभावो॥119॥

स्त्री कथा, भोजन कथा, चौर्य कथा व राजकथा इन सभी विकथाओं से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीवों के सदैव शुभभाव होता है।

पण-अणुव्वदं तिगुणव्वदं चउसिक्खं तच्चरुइणा जो।
पालदि सो णादव्वो, सामी णियमा सुहजोगस्स॥120॥

जो तत्त्वरुचिपूर्वक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का पालन करता है वह नियम से शुभोपयोग का स्वामी जानना चाहिए।

दंसणपडिमाए जो, उद्दिट्ठभोयणचागपज्जंतं।
एयारस-पडिमाओ, पालेदि सुह-उवजोगी सो॥121॥

जो दर्शनप्रतिमा से उद्दिष्टभोजनत्याग प्रतिमा पर्यन्त ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करता है, वह शुभोपयोगी होता है।

पमादसहिदा सगवय-पालणे अणुरत्ता अंतरप्पा।
अदिक्कमाइ-दोसादु, विवज्जिदा सुहभावजुत्ता॥122॥

जो प्रमाद से सहित अन्तरात्मा मुनिराज अपने व्रतों का पालन करने में अनुरक्त हैं एवं अतिक्रमादि दोषों से रहित हैं वे शुभ भाव से युक्त हैं।

महव्वदसमिदिजुत्ता, अक्ख-जेदू आवसिय-कज्ज-रदा।
मूलुत्तरगुणजुत्ता, पमत्ता वि सुहजोगजुत्ता॥123॥

जो महाव्रत व समिति से युक्त हैं, इन्द्रिय-विजेता हैं, आवश्यक कार्यों में रत हैं, मूलगुण व उत्तरगुणों से युक्त हैं वे प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिराज शुभोपयोग से युक्त हैं।

पुलाग-बकुस-कुसीला, जदि पडंति पमत्ते अपमत्तादु।
तहवि सुहुवजोगी ते, पुज्जा सय सद्दिट्ठि-वदीहि।124॥

पुलाक, बकुश और कुशील मुनि यदि अप्रमत्त गुणस्थान से प्रमत्त गुणस्थान में पतित भी होते हैं, तो भी वे शुभोपयोगी मुनिराज सम्यग्दृष्टि एवं व्रतियों द्वारा सदैव पूज्य होते हैं।

संगहणुग्गह-कुसलो, सिस्साण णिग्गहे दंडरूवेण।
पञ्चायार-पालणे, पायच्छित्ताइं दायिदुं॥125॥

मोक्खपहं उवदिसिदुं, चउव्विहसंघ-सुणायगो णिच्चं।
मूलुत्तर-गुणपालगो, आइरियो सुहुवजोगजुदो॥126॥ (जुम्मं)

जो नित्य ही शिष्यों के सङ्ग्रह व अनुग्रह में कुशल हैं, दण्डरूप से उनके निग्रह में भी कुशल हैं, पञ्चाचार के

पालन में, प्रायश्चित्तादि देने में, मोक्षमार्ग का उपदेश देने में कुशल हैं, चतुर्विध सङ्घ के नायक हैं, मूलगुण व उत्तरगुण के पालक हैं वे आचार्य शुभोपयोग से युक्त हैं।

चउ-अणुजोग-जाणगो, णायसिद्धंत-वागरणवत्थूण।
जोदिस-पमाण-णयाण, इत्थी-पुरिसाण कलाणं च॥127॥

सगपरसमयवण्णगो, णिग्गंथो उवज्झाय-परमेट्ठी।
पाढगा सुहुवजोगी, संलीणो पढण-पाढणम्मि॥128॥ (जुम्मं)

जो चार अनुयोग, न्याय, सिद्धान्त, व्याकरण, वास्तु, ज्योतिष, प्रमाण, नय, स्त्री व पुरुषों की कलाओं के जानकार हैं, स्व-पर-समय का वर्णन करने वाले हैं, पठन-पाठन में संलीन हैं, वे निर्ग्रन्थ उपाध्याय परमेष्ठी शुभोपयोगी हैं।

कुणंतो समाहाणं, जिण्णासाण णाणाविह-संकाण।
वादि-पडिवादी मुणी, सुहुवजोगी णेव संकेज्ज॥129॥

नाना प्रकार की शङ्काओं व जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए भी वादी-प्रतिवादी मुनि शुभोपयोगी हैं इसमें शङ्का नहीं करनी चाहिए।

पमादजुदहिंसाए, सदीए वि संभवो जदि भावलिंगी।
रयणत्तयजुत्त-मुणी, पमत्तठाणे पमादादो॥130॥

प्रमत्त गुणस्थान में प्रमाद होने से रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र) युक्त मुनिराज प्रमादयुक्त हिंसा होने पर भी भावलिङ्गी यति सम्भव हैं।

शुभोपयोग प्राप्ति

जिणसुदमुणि-धम्मेहिं, विणा उज्झेदुं असुहउवजोगं।
णेव दु को वि समत्थो, पावेदुं सुहउवजोगं च॥131॥

जिनेन्द्रप्रभु, जिनश्रुत, निर्ग्रन्थ मुनि व जिनधर्म के बिना कोई भी जीव अशुभ उपयोग का त्याग करने और शुभ उपयोग को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।

जिणवंदणा थुदी वेज्जावच्च-मज्झयणं झाणमादी।
पच्चक्खाणं च पडिक्कमणं समणाण सुहुवजोगहेदू॥132॥

जिनवन्दना, स्तुति, वैय्यावृत्ति, अध्ययन (स्वाध्याय), ध्यान, प्रत्याख्यान व प्रतिक्रमण आदि श्रमणों के शुभोपयोग के हेतु हैं।

शुभोपयोग के हेतु

जिणभत्ती गुरुसेवा, तित्थजत्ता जवो सुपत्तदाणं।
सीलाइ-वद-पालणं, उववासो गुणाणुरायो य॥133॥

जिणसुदणिग्गंथेसुं, सड्ढा तच्चचिंतणं सज्झाओ।
अविरद-सावगाण सुह-कज्जाणि सुहुवजोग-हेदू॥134॥ (जुम्मं)

जिनभक्ति, गुरुसेवा, तीर्थयात्रा, जप, सुपात्रदान, शीलादि व्रतों का पालन, उपवास, गुणानुराग, जिन-श्रुत व निर्ग्रन्थ मुनियों में श्रद्धा, तत्त्वचिन्तन व स्वाध्याय आदि ये शुभ कार्य अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावकों के शुभोपयोग के हेतु हैं।

सम्यक्त्व का लक्षण

जिणण्णापालणं णिग्गंथ-चरणेसु महुयरोव्व भत्ती।
जिणवयणेसु रुई सम्मत्तं पालेज्ज सुभावेहि॥135॥

जिनाज्ञा का पालन, निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरणों में भ्रमर के समान भक्ति, जिनवचनों में रुचि सम्यक्त्व है। उसका शुभभावों से पालन करना चाहिए।

व्रत पालन निर्देश

अहो आसण्ण-भव्वो!, जइ इच्छसि सिवसुहं तो वीहित्तु।
भवदुहादो पालेज्ज, सावय-समण-वदं सत्तीइ॥136॥

भो आसन्न भव्य जीव! यदि मोक्ष सुख की इच्छा करते हो तो संसार के दु:खों से भयभीत होकर शक्तिपूर्वक श्रावक व श्रमण के व्रतों का पालन करो।

कुलाचार व मर्यादा पालन

भो जइणाकुलुप्पण्णो! पालेज्ज सुभावेहि कुलायारं।
कुलायार-मज्जादा-उल्लंघणं दुग्गदि-हेदू॥137॥

अहो जैनकुल में उत्पन्न भव्यजीव! शुभभावों से कुलाचार का पालन करो। कुलाचार व कुल मर्यादा का उल्लङ्घन दुर्गति का हेतु है।

तत्त्वचिन्तन का फल

परमोत्तम-भाव-जुदो, कुव्वदि जो तच्चचिंतणं णिच्चं।
पावदि सारज्जं पुण, अप्पुप्पण्ण-अणंत-सोक्खं॥138॥

परमोत्तम भाव से युक्त जो जीव नित्य तत्त्वचिन्तन करता है वह स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त करके क्रमशः आत्मोत्पन्न अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

भाव शून्य शुभ वेष भी निरर्थक

भावसुण्ण-सुहवेसो, ण पुण्ण-सत्थगो परमट्ठ-हेदू।
तं भावविसोहीए, करेज्जा सुहकिरियं णिच्चं॥139॥

भावशून्य शुभ वेष पूर्ण सार्थक नहीं है, परमार्थ का हेतु नहीं है। अतः नित्य ही भावविशुद्धिपूर्वक शुभ क्रिया करनी चाहिए।

शुभ भाव-परमसमाधि का कारण

एगत्तं च अणिच्चं, सुदं सत्तं तवं विराग-भावं।
भावदि जो सो लहेदि, परमसमाहिं विसोहीए॥140॥

जो एकत्व भावना, अनित्य भावना, श्रुत, सत्त्व, तप, वैराग्यभाव को भाता है वह विशुद्धिपूर्वक परम समाधि को प्राप्त करता है।

मैत्री आदि भावों से सुख

मित्ति-पमोद-मज्झत्थ-दया-वच्छल-भत्ति-सेवा-भावा।
जस्स मणे सो धम्मं, पालंतो लहदि परमसुहं॥141॥

जिसके मन में मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ, दया, वात्सल्य, भक्ति व सेवा के भाव रहते हैं वह धर्म का पालन करते हुए परमसुख को प्राप्त करता है।

बारह अनुप्रेक्षाओं का प्रभाव

बारस-अणुवेक्खाओ, डज्झेदुं दुहकाणणं अग्गीव।
बारस-भावण-रहिदा, दुहभोत्ता दीहसंसारी॥142॥

दुःखरूपी वन को जलाने के लिए बारह अनुप्रेक्षाएँ अग्नि के समान हैं। बारह भावनाओं से रहित जीव दुःख को भोगने वाला व दीर्घसंसारी होता है।

व्रतशुद्धि हेतु भावना आवश्यक

अहिंसाइ-वदाणं च, सुद्धीए सय भावणं भावेज्ज।
विणा सुद्धभावेहिं, वदं णो फलदि सुद्धरूवे॥143॥

अहिंसादि व्रतों की शुद्धि के लिए सदा इनकी भावना भानी चाहिए। शुद्धभावों के बिना व्रत शुद्ध रूप में फलित नहीं होते।

सोलहकारण भावना का फल

दंसण-विसोही-आइ-सोलसकारणभावणाइ जीवो।
तित्थयरो तित्थपइडि-मसक्को बंधिदुं विणा तं॥144॥

दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं से जीव तीर्थङ्कर होता है। उन सोलहकारण भावनाओं के बिना जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने में असमर्थ होता है।

भावसहित व्रतपालन का फल

जमं णियमं संजमं, सुभावेहि पालदि दिव-सिव-सोक्खं।
पावदि भावविहीणो, वड्ढेज्जा घोर-संसारं॥145॥

जो शुभभावपूर्वक यम, नियम, संयम का पालन करता है वह स्वर्ग व मोक्ष को प्राप्त करता है। जबकि भावविहीन घोर संसार को वृद्धिङ्गत करता है।

भावों का भोजन पर प्रभाव

विसोव्व रोयवड्ढगं, भोयणं भुंजिदं असुहभावेहि।
अमियं व ओसहीव य, गहिदं सुह-पसत्थ-भावेहि॥146॥

अशुभभावों से ग्रहण किया गया भोजन विष के समान व रोगवर्द्धक होता है। जबकि शुभ व प्रशस्त भावों से ग्रहण किया गया भोजन अमृत के समान और औषधि के समान है।

द्रव्य से नहीं, भाव से उपयोग

सभावेहि सक्को सुहुवजोगो ण मेत्तं दव्वकिरियाहि।
असुहुवजोगो वदीव, सम्मत्त-रहिद-किरियाहिं हि॥147॥

मात्र द्रव्य क्रियाओं से नहीं अपने परिणामों से ही शुभोपयोग शक्य है। सम्यक्त्व से रहित व्रतियों के समान क्रियाएँ करने पर भी अशुभ उपयोग होता है।

णो लहदि भावसुण्णो, मेत्तं किरियाहिं दु सुपुण्णफलं।
णिरत्थगं विज्जुदेण, विणा दु विज्जुद-उवयरणं व॥148॥

भावों से शून्य जीव मात्र क्रियाओं से सुपुण्यफल को उसी प्रकार प्राप्त नहीं करता जिस प्रकार विद्युत् के बिना विद्युत् उपकरण निरर्थक हैं।

शुद्ध भाव महत्ता

जह देहेसु चेयणा, गंधो पुप्फेसु णाणं णरेसु।
सिंधुम्मि रयणं णहे, गहा महुरिमा इक्खुदंडे॥149॥

सिवपहे सुद्धभावा, तेहिं विणा दव्वकिरिया सव्वा।
णीरं विणा सरिदा व, केवलणाणेण परमप्पा॥150॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार शरीर में चेतना, पुष्पों में सुगन्ध, मनुष्यों में ज्ञान, सागर में रत्न, इक्षुदण्ड में मधुरता और आकाश में ज्योतिष ग्रह होते हैं, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में शुद्ध भाव होते हैं। उन शुद्धभावों के बिना सभी द्रव्य क्रियाएँ वैसे ही हैं जैसे जल के बिना नदी और केवलज्ञान के बिना परमात्मा।

शुद्धोपयोग के स्वामी

परमझाणसंलीणो, णिच्छय-रयणत्तय-जुत्तो समणो।
णिव्विअप्प-जोगी खलु, सुद्धुवजोग-जुत्तो णेयो॥151॥

परमध्यान में लीन, निश्चय रत्नत्रय से युक्त श्रमण, निर्विकल्प योगी निश्चय से शुद्धोपयोग से युक्त जानना चाहिए।

णिग्गंथो जगपुज्जो, उवसम-खवग-सेढी-आरोहगो।
णियमा सुद्धुवजोगी, भासिदो गणहरदेवेहिं॥152॥

जगत्पूज्य निर्ग्रन्थ, उपशम वा क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले नियम से शुद्धोपयोगी हैं ऐसा गणधर देवों ने कहा है।

अप्पमत्तादो खीण-मोहंतं चिय छ-गुणट्ठाणेसुं।
विउल-कम्म-णिवारगा, सुद्धुवजोगी सव्वसमणा॥153॥

अप्रमत्त गुणस्थान से क्षीणमोह गुणस्थान तक इन छह गुणस्थानों में विपुल कर्मों को नष्ट करने वाले सभी श्रमण शुद्धोपयोगी होते हैं।

णिच्छय-चरियवंता दु, बालोव्व सरलो उसहोव्व भद्दो।
सायरोव्व गुणपुंजो, भावी जिणो सुद्धुवजोगी॥154॥

बालक के समान सरल, वृषभ के समान भद्र, सागर के समान गुणपुञ्ज, निश्चय चारित्र का पालन करने वाले, भावीजिन निश्चय से शुद्धोपयोगी होते हैं।

सजोग-केवलीदो दु, अह-ठाणेसु सुद्धप्पे रमंता।
अप्पमत्तंतं सुक्क-लेस्सा-जुदा सुद्धुवजोगी॥155॥

सयोगकेवली गुणस्थान से नीचे के गुणस्थानों में अप्रमत्त गुणस्थान तक शुद्धात्मा में रमण करते हुए शुक्ल लेश्या से युक्त श्रमण शुद्धोपयोगी होते हैं।

आहारसण्णारहिद-मुणी भयाइ-सहिदो अबुद्धीए।
चउसण्णाहीणा वा, वीदरागी सुद्धुवजोगी॥156॥

आहारसंज्ञा से रहित व अबुद्धिपूर्वक भय आदि संज्ञा से सहित अथवा चारों संज्ञाओं से हीन वीतरागी मुनिराज शुद्धोपयोगी होते हैं।

बहु-इड्ढि-संजुत्तो दु, पडिक्खणे कम्मुवसमं करेदुं।
सक्को सुद्धुवजोगी, णिव्विअप्पसुद्धप्पझाणी॥157॥

बहुत ऋद्धियों से संयुक्त, प्रतिक्षण कर्म का उपशम करने में समर्थ निर्विकल्प शुद्धात्मध्यानी मुनिराज शुद्धोपयोगी होते हैं।

सुद्धुवजोग-महत्तं, को खमो वण्णिदुं पुण्णरूवेण।
सद्दववसायहीणा, सुद्धुवजोगी अप्पलीणो॥158॥

शुद्धोपयोग की महत्ता का पूर्णरूप से वर्णन करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। वे शुद्धोपयोगी मुनिराज आत्मलीन व शब्दव्यवसाय से हीन होते हैं।

जो असुह-सुह-उवजोग-विवज्जिदो जदा छउमत्थो तदा।
णियमा सुद्धुवजोगी, सेढी-सम्मुहो इदरो वा॥159॥

जब जो छद्मस्थ अशुभ व शुभोपयोग से रहित हैं तब वे श्रेणी के सम्मुख वा इतर अर्थात् श्रेणी पर आरूढ़ मुनिराज नियम से शुद्धोपयोगी हैं।

लहेदुं सुद्धुवजोग-फल-मसक्को छउमत्थ-अपमत्तो।
जावदु तावदु णेयो, भयवदो विहरंतो महीइ॥160॥

जब तक अप्रमत्त छद्मस्थ शुद्धोपयोग के फल को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, तब तक वे भूमि पर विहार करते हुए भगवान् हैं।

शुद्धोपयोगी की वन्दना

अणंतचदुट्ठयजुदा, सुद्धुवजोगफलं दु पभुंजंता।
वंदेमि सुभत्तीए, सव्वदा तिजोगसुद्धीए॥161॥

शुद्धोपयोग के फल को भोगते हुए अनन्त चतुष्टय से युक्त अरिहन्त-जिन की तीनों योगों की शुद्धिपूर्वक सुभक्ति से सर्वदा वन्दना करता हूँ।

शुद्धात्म ध्यान प्रेरणा

भो समणो! जदि कंखसि, सगप्पसासयसुद्धसहावं तो।
कुणह सुद्धप्पझाणं, विसयकसायपावं विहाय॥162॥

अहो श्रमण! यदि अपनी आत्मा के शाश्वत शुद्ध स्वभाव की आकाङ्क्षा करते हो तो विषय-कषाय व पाप को छोड़कर शुद्धात्मा का ध्यान करो।

शुद्धोपयोगी मुनिदर्शन फल

सुद्धुवजोगि-मुणीणं, दंसण-पूया-भत्ति-उवासणा दु।
विउलपावणिज्जराइ, कारणं सादिसय-पुण्णस्स॥163॥

शुद्धोपयोगी मुनियों के दर्शन, पूजा, भक्ति व उपासना निश्चय से विपुल पाप कर्मों की निर्जरा एवं सातिशय पुण्य का कारण है।

शुद्धोपयोग फल प्राप्त करने वाला

सुद्धुवजोग-फल-जुदा, सजोग-अजोग-केवली जिणिंदा।
जाण सयल-परमप्पा, णोसंसारी य अरिहंता॥164॥

शुद्धोपयोग के फल से युक्त सयोगकेवली व अयोग केवली जिनेन्द्र सकलपरमात्मा हैं। ये सकलपरमात्मा या अरिहन्तजिन नोसंसारी जानने चाहिए।

अरिहन्त शुभ, अशुभ वा शुद्ध उपयोग रहित

अरिहा मोहणिज्जाइ-चदु-घादिकम्म-विरहिदा णियमेण।
सुद्धुवजोग-फलं ते, भुंजंति ण को वि उवओगो॥165॥

अरिहन्त भगवान् नियम से मोहनीय कर्म आदि चार घातिया कर्मों से रहित होते हैं। वे शुद्धोपयोग के फल को भोगते हैं। उनका शुभ, अशुभ वा शुद्ध कोई भी उपयोग नहीं होता।

शुद्धोपयोग फल प्राप्तकर्ता की वन्दना

णवखइयलद्धिधारी, तह सुद्धुवजोग-फल-पभुंजंता।
भयवंता णमंसामि, पाविदुं सुद्धुवजोगफलं॥166॥

शुद्धोपयोग के फल को भोगते हुए नव क्षायिकलब्धि धारी भगवन्तों को शुद्धोपयोग के फल की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

भाव द्रव्य से प्रधान

भावो पढमं लिंगं, तेण सह अणंतरं दव्वलिंगं।
भावजुत्तणिग्गंथो, लहदे सुद्धप्प-विहवं तं॥167॥

भाव प्रथम लिङ्ग है, उसके साथ अनन्तर द्रव्य लिङ्ग होता है। अतः भाव युक्त निर्ग्रन्थ मुनिराज शुद्धात्म वैभव को प्राप्त करते हैं।

भावों से श्रेष्ठता

एगो कुणदि सुभावं, होदि हिंसाकम्मं अबुद्धीए।
भावसुण्णपुण्णं तह, विदियो हु तदा वरो पढमो॥168॥

एक अच्छे (निर्मल, विशुद्ध) भाव करता है किन्तु उससे अबुद्धिपूर्वक हिंसा कर्म हो जाता है तथा दूसरा भावशून्य पुण्यक्रिया करता है तब दोनों में प्रथम ही श्रेष्ठ है।

अशुभ भावों से शुभ क्रिया भी दूषित

दूसिदा सुद्धकिरिया, अणेगवारं असुद्धभावेहिं।
असुद्धजलं अपेयं, कणग-कलसम्मि वि इह लोए॥169॥

अशुद्ध भावों से जीव की शुद्ध क्रिया अनेक बार उसी प्रकार दूषित हुई जैसे स्वर्ण कलश में रखा अशुद्ध जल इस लोक में अपेय होता है।

तीव्रकषाययुक्त पापी

कुव्वदि हिंसाभावं, एगो विदियो तह हिंसाकम्मं।
उहयाण अघं समं ण, अइकसायजुद-महापावी॥170॥

एक जीव हिंसा का भाव करता है और दूसरे से हिंसाकर्म हो जाता है, तब भी दोनों का पाप समान नहीं है। अतिकषाय से युक्त जीव ही महापापी है।

जिनशासन का सार

सुहासुह-भावो पुण्ण-पाव-कारणं जिणसासण-सारो।
णिरत्थगा खलु सव्वा, दव्वकिरिया विणा भावेहि॥171॥

शुभ व अशुभ भाव क्रमशः पुण्य व पाप का कारण हैं, यह जिनशासन का सार है। भावों के बिना सभी द्रव्यक्रिया निरर्थक है।

विशुद्धभावहीन नैर्ग्रन्थ्य भी सार्थक नहीं

धण्णविहीण-तुसाणं, कुट्टणेण अपत्तधण्णणारीव।
विसुद्धभावविहीणो, मुणि-अवत्था सत्थगा णेव॥172॥

जैसे धान्य से रहित मात्र तुष के कूटने से नारी धान्य को प्राप्त नहीं करती उसी प्रकार विशुद्ध भाव से विहीन मुनिअवस्था सार्थक नहीं है।

सुभावशून्य मोक्षमार्गी नहीं

सिकतापेल्लणेण तिल्लं णवणीदं जलमंथणेणं च।
कागदसुमेहि इत्तं, णो णीरं सुक्ककूवादो॥173॥

महुरिमं इक्खुरसं च, पेल्लणेणं सुक्कइक्खुदंडस्स।
भावहीणकिरियाए, जह तह ण लहदि मोक्खमग्गं॥174॥

(जुम्मं)

जिस प्रकार बालू के पेलने से तेल, जलमन्थन से नवनीत, कागज के फूलों से इत्र, सूखे कुएँ से जल, शुष्क इक्षु दण्ड के पेलने से इक्षुरस प्राप्त नहीं होता है, उसी प्रकार भावशून्य मात्र क्रिया से मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता।

मूर्च्छा रहित चक्री की सुगति

बंधदि णिरयाउं बहु-आरंभ-परिग्गह-भाव-जुत्तो वि।
मुच्छावज्जिदचक्की, पाउणदि मोक्खं सग्गं वा॥175॥

बहुत आरम्भ व परिग्रह भाव से युक्त जीव भी नरकायु का बन्ध करता है। मूर्च्छा (परिग्रह) से रहित चक्रवर्ती मोक्ष वा स्वर्ग को प्राप्त करता है।

हिंसाभावयुक्त भी महापापी

तिव्वकसायी रायी, कुणदि तिव्वहिंसाभावं सययं।
महापावी णियमादु, जीवेगं णेव मारंतो॥176॥

जो तीव्रकषायी रागी जीव निरन्तर तीव्र हिंसा के भाव करता है वह एक जीव को नहीं मारते हुए भी नियम से महापापी है।

सुभाव भी पुण्यदायक

जिणपूया-गुरुसेवा-तित्थवंदणा-परोवयाराणं।
भावा वि देज्ज पुण्णं, किदकारिदाणुमोदणेहिं॥177॥

कृत, कारित व अनुमोदना से जिनपूजा, गुरुसेवा, तीर्थवन्दना व परोपकार के भाव भी पुण्य को देते हैं।

पात्रदान अनुमोदना से भोगभूमि

तिरियो भोयभूमिजो, सुरो पुण पत्तदाणणुमोदणेण।
तस्सिं विग्घं किच्चा, पावदि दुग्गदिं दारिद्दं॥178॥

पात्रदान की अनुमोदना से तिर्यञ्च भी भोगभूमियाँ जीव, पुनः देव होता है। उसमें विघ्न कर जीव दुर्गति व दरिद्रता को प्राप्त करता है।

भावों का प्रभाव

तिव्वकसायेहि कुणदि, अणुमण्णदि वा दुट्ठो पावं तो।
भुंजेज्जा पावफलं, सिरिकंठोव्व आरक्खगोव्व॥179॥

जो दुष्ट जीव तीव्र कषाय से पाप करता है या अनुमोदना भी करता है तो वह राजा श्रीकण्ठ व उसके सिपाहियों के समान पाप के फल को भोगता है।

विशेषार्थ–राजा श्रीकण्ठ ने मुनिराज का उपहास किया एवं सातसौ सिपाहियों ने उसकी अनुमोदना की जिससे राजा श्रीपाल की पर्याय में वे कुष्ट रोगी हुए और साथ में सातसौ सिपाहियों ने भी कुष्ट रोग को सहन किया। इसी प्रकार पाप करने वाले व उसकी अनुमोदना करने वाले को भी पाप का फल भोगना पड़ता है।

वीरपूयाभावेहि, दुद्दरेण लहिदा सुरगदी अइरं।
मरिय वि भूवदि-गय-पगतल-अह भो पस्स भावफलं॥180॥

अहो! भावों के फल को देखो। समवसरण में विराजमान श्री महावीर स्वामी की पूजा के भावों से राजा श्रेणिक के हाथी के पैरों के नीचे मरकर मेंढक ने शीघ्र देवगति को प्राप्त किया।

सिवभूदी मुणिराओ, केवलणाणं भावसुदबलेणं।
मिदुमदी मुणी लहीअ, दुग्गदिं च संकिलेसेणं॥181॥

श्री शिवभूति मुनिराज ने भावश्रुत के बल से केवलज्ञान को प्राप्त किया एवं श्री मृदुमति मुनिराज ने संक्लेशता से दुर्गति को प्राप्त किया।

सामइय-दव्वकिरियं, कुणंतो अवि भावसंकिलेसेण।
णायदत्तो दुद्दरो, होही जं भाव-विसेसा हि॥182॥

सामायिक रूप द्रव्यक्रिया को करते हुए भाव सङ्क्लेश से वह नागदत्त सेठ मेंढक हुआ क्योंकि भाव विशेष होते हैं।

दयाइ किसिं कुणंतो, सस्सियो सग्गं हिंसाभावो ण।
धीवरो मारंतो ण, मच्छेगं वि दुग्गदिं लहदि॥183॥

दयापूर्वक कृषि करते हुए कृषक स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है क्योंकि उसके हिंसाभाव नहीं है किन्तु एक भी मछली को न मारते हुए धीवर दुर्गति को प्राप्त करता है।

सुकोसलो हरिवाहण-पुत्तो तुंगभद्दा मउणवदेण।
भावविसुद्धिबलेणं, तेण पुण लहिदं णिव्वाणं॥184॥

तुङ्गभद्रा मौनव्रत के प्रभाव से हरिवाहन का पुत्र सुकौशल हुआ। पुनः भावविशुद्धि के बल से उसने निर्वाण को प्राप्त किया।

मुणिरक्खाभावेणं, लहिदा वराहेणं च देवगदी।
सीहेणं णिरय-गदी, मुणिघादभावेहि जुज्झित्तु॥185॥

मुनिरक्षा के भाव से शूकर ने युद्ध करके देवगति को प्राप्त किया जबकि मुनिघात के भावों से युद्ध कर सिंह ने नरकगति प्राप्त की।

पीदिंगरो सिवो पुण, णिसिअसणचागभावेण सिआरो।
सीहो वि भरदचक्की, आहारदाणणुमोदणेण॥186॥

रात्रिभोजन त्याग के भाव से सियार प्रीतिङ्कर कुमार हुआ पुनः सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया। आहारदान की अनुमोदना से शेर भी भरत चक्रवर्ती हुआ।

वसिट्ठ-दीवायणाइ-तवस्सीहि संकिलेस-भावेहिं।
पाउणिदा दुग्गदी य, को णो जाणेदि आगमेण॥187॥

वशिष्ठ व द्वीपायन आदि तपस्वियों ने सङ्क्लेश भावों से दुर्गति को प्राप्त किया, जिनागम से ऐसा कौन नहीं जानता? अर्थात् सब जानते हैं।

खेमंकर-सेट्ठिस्स य, धण्णंगर-पुण्णंगर-सेवगा य।
पणवराडिगाहि जिणं, अच्चिय अमरो वइरसेणो॥188॥

क्षेमङ्कर श्रेष्ठी के धण्णङ्कर व पुण्णङ्कर सेवक भावपूर्वक पाँच कौड़ियों से श्री जिनेन्द्रप्रभु की अर्चना करके अमरसेन व वइरसेन हुए।

दसाणणो जिणभत्तिं, कुव्वंतो परित्थी-रमण-भावं।
मलिणं किच्चा लहीअ, णिरय-मुज्झदु अबंभभावं॥189॥

दशानन (रावण) ने जिनभक्ति करते हुए भी परस्त्री रमण के मलिन भाव करके नरक को प्राप्त किया। अतः अब्रह्मभाव का त्याग करो।

विण्हु-कुमार-मुणिंदो, उवसग्ग-णिवारण-भावणाए दु।
सगपदादो चुदो पुण, मुणी होच्चा लहीअ मोक्खं॥190॥

उपसर्ग निवारण की भावना से श्री विष्णुकुमार मुनिराज अपने पद से च्युत हुए। पुनः मुनि होकर (उसी भव में) मोक्ष प्राप्त किया।

मच्छेगं खादंतो, वि ण बगो लहदि भुंजण-कुभावेहि।
दुग्गदिं रायपुत्तो, ससरक्खाभावेहि हत्थी॥191॥

एक मछली को ना खाता हुआ बगुला भी उसे खाने के कुभाव से दुर्गति को प्राप्त करता है तथा खरगोश की रक्षा के भावों से हाथी भी राजपुत्र हुआ।

अद्दिकुमार-मुणिवरो, विसट्टिय सगपदादो पुण होही।
मुणी दु भावविसुद्धं, कडुअ पडिलभीअ णिव्वाणं॥192॥

अद्रिकुमार मुनिराज अपने पद से च्युत होकर पुनः मुनिराज हुए। अनन्तर भाव विशुद्ध करके निर्वाण को प्राप्त किया।

ओसहिदाण-भावेहि, भावि-तित्थो णारायणो किण्हो।
बंभदत्तो दु णिरयं, लहीअ आखेड-भावेहिं॥193॥

औषधिदान के भावों से नारायण कृष्ण भविष्य में तीर्थङ्कर होंगे और चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने शिकार के भावों से नरक को प्राप्त किया।

भाव-विसुद्धीइ महा-पउमतित्थो अग्गे खदिरसारो।
विसयेसुं आसत्तो, सुभोमचक्की य णेरइयो॥194॥

खदिरसार भील भाव विशुद्धि से आगे महापद्म तीर्थङ्कर होंगे, एवं विषयों में आसक्त सुभौमचक्रवर्ती नारकी हुआ।

मिगसेण-धीवरो पण-वारं पाणदाणेणं मच्छस्स।
सेट्ठि-धणकित्ती मुणिं, होच्च पुण लहीअ सारज्जं॥195॥

मृगसेन धीवर एक मछली को पाँच बार प्राणदान देने से श्रेष्ठी धनकीर्ति हुआ पुनः मुनि होकर स्वर्ग के साम्राज्य को प्राप्त किया।

धणदत्तो गोवो जिण-भत्ति-पहावेण णिच्छलभावेहिं।
होज्ज राय-करकंडू, अह परमगदिं पडिलंभीअ॥196॥

निश्छल भावों से जिनभक्ति के प्रभाव से धनदत्त ग्वाला राजा करकण्डु हुआ। अनन्तर परमगति को प्राप्त किया।

महामंतपहावेण, वेज्जावच्चेण एगरत्तीए।
सुभगो गोवो होही, सुदंसणो लहीअ मोक्खं च॥197॥

महामन्त्र के प्रभाव से व एक रात्रि वैयावृत्ति करने से सुभग ग्वाला सेठ सुदर्शन हुआ व मोक्ष को प्राप्त किया।

णीलो महाणीलो य, होज्ज हत्थी अइ-कुडिलभावेहिं।
पुणो भत्तिभावेहिं, सग्गम्मि महड्ढियो देवो॥198॥

नील व महानील अति कुटिल भावों से हाथी हुए पुनः भक्ति के भावों से स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए।

अक्किदपुण्णो सुपत्त-दाणणुमोदणेण धण्णकुमारो।
णिम्मल्ल-सेवणेणं, लहीअ दुग्गदिं पुव्वभवे॥199॥

अकृतपुण्य सुपात्रदान की अनुमोदना से धन्यकुमार हुआ एवं पूर्वभव में निर्माल्य सेवन से दुर्गति को प्राप्त किया।

संक्लेशतम दया तीर्थंकर प्रकृति बंध का कारण

बंधेदि तित्थपइडिं, संकिलेस-दया-भावेहि णियमा।
मदेण तवं कुणंतो, लहदि दुहं अभव्वसेणोव्व॥200॥

जीव सङ्क्लेशतम दया भावों से नियम से तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करता है। जबकि अहङ्कारपूर्वक तप करते हुए अभव्यसेन मुनिराज के समान जीव दुःख प्राप्त करता है।

मादंगो धणदेवो वारिसेणो णीली जयो पालिय।
एगेगवदं वि भाव-विसुद्धीए तदा सुरपुज्जा॥201॥

मातङ्ग(यमपाल चांडाल), धनदेव, वारिषेण, नीली व जयकुमार भावविशुद्धिपूर्वक एक-एक व्रत का पालन करके भी देवों द्वारा पूज्य हुए।

अणंतमदि-मणोवदी, मणोरमा सीदा सोमा णीली।
रक्खिदा देवेहिं च, भावविसोहिकारणेणं दु॥202॥

अनन्तमति, मनोवती, मनोरमा, सीता, सोमा, नीली ये भावविशुद्धि के कारण देवों के द्वारा रक्षित हुईं।

उक्किट्ठ-भाव-बलेण, भरदस्स णवसयतेवीस-पुत्ता।
कम्मं खयित्तु सिद्धा, भव्वो! जाण भाव-माहप्पं॥203॥

उत्कृष्ट भाव के बल से भरत चक्रवर्ती के नौ सौ तेईस पुत्र कर्मों को नष्ट कर सिद्ध हुए। अहो भव्यजीव! भावों का माहात्म्य जानो।

उवसेणिग-पुत्त-बिंबसारो अग्गे होज्जा तित्थयरो।
बंधिदं णिरय-आउं, मुणिउवसग्गेणं जेणं दु॥204॥

राजा उपश्रेणिक के पुत्र राजा बिम्बसार (श्रेणिक) आगे तीर्थङ्कर होंगे, जिन्होंने मुनि यशोधरजी पर उपसर्ग करने से नरकायु का बन्ध किया था।

मुणि-उवसग्गेण देव-भूव-तिरिया होज्ज दुग्गदिपत्ता।
धम्मभावेण विंतर-पसु-मादंगा सुगदि-पत्ता॥205॥

मुनिराज पर उपसर्ग करने से देव, राजा, तिर्यञ्च भी दुर्गति के पात्र हुए, तथा धर्म के भाव से व्यन्तरदेव, तिर्यञ्च व चाण्डाल भी सुगति के पात्र हुए।

निदान रहित पुण्य-मोक्षकारक

सुहभावेहिं जीवो, आवज्जेदि विउलपुण्णरासिं दु।
णिदाण-वज्जिद-भावा, मोक्ख-कारणं सद्दिट्ठिस्स॥206॥

शुभ भावों से जीव विपुल पुण्यराशि का अर्जन करता है। सम्यग्दृष्टि के निदान से रहित भाव मोक्ष का कारण होते हैं।

मिथ्यादृष्टि का पुण्य भी भव-कारक

मिच्छो कंखा-हीणो, सक्को अज्जिदु-मदिसयपुण्णं णो।
तत्तो तस्स पुण्णं पि, भवकारणं होदि णियमादु॥207॥

जो आकाङ्क्षा से रहित हैं, वे मिथ्यादृष्टि जीव भी अतिशय पुण्य का अर्जन करने में समर्थ नहीं हैं अतः उनका पुण्य भी नियम से संसार का कारण होता है।

भावों का माहात्म्य

असुहभावेण सक्का, जम्मिदुं सुरासुरा थावरेसुं।
उक्किट्ठ-तसो होदुं, थावरो वि मंदकसायेण॥208॥

अशुभभाव से सुर-असुर भी स्थावरों में जन्म लेने में शक्य हैं तथा मन्दकषाय से स्थावर भी उत्कृष्ट त्रस होने में शक्य है।

जैसे भाव, वैसा फल

अणादीदु संसारे, सुहासुहसुद्धभाव-फलं णिच्चं।
कयावि णेव संभवो, विवरीय-फलं सग-भावादु॥209॥

अनादिकाल से संसार में शुभ, अशुभ व शुद्ध भाव का फल नित्य (शाश्वत) है। अपने भाव से विपरीत फल कदापि सम्भव नहीं है।

किन भावों से कैसे फल की प्राप्ति

असुहभावेहि दुक्खं, सुह-भावेहि भव-सिव-सुहं कमसो।
सुद्धभावो णियमा हि, पञ्चमगदि-कारणं णेयो॥210॥

जीव अशुभ भावों से दु:ख व शुभ भावों से क्रमश: संसार व मोक्ष सुख प्राप्त करता है। शुद्धभाव नियम से ही पञ्चमगति का कारण जानना चाहिए।

शुद्ध भाव ही मोक्षकारक

सुद्धभावो सिवपहो, अप्पं सोहिदुं ण सक्का अण्णा।
सुद्धभावेहिं विणा, ण को वि सक्को सिवं लहिदुं॥211॥

शुद्धभाव मोक्षमार्ग है। आत्मा को शोधित करने के लिए अन्य भाव समर्थ नहीं हैं। शुद्धभावों के बिना कोई भी मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

किन भावों से कर्मक्षय

पत्तेयं खेत्ते सय, भेयाभेयरयणत्तय-भावा य।
असीव कम्मं खयिदुं, देज्ज धारं भाविय पुण पुण॥212॥

प्रत्येक क्षेत्र में भेद व अभेद रत्नत्रय के भाव कर्मक्षय करने के लिए तलवार के समान हैं। उन्हें पुनः पुनः भाकर रत्नत्रय रूपी तलवार को धार देनी चाहिए।

भावों को संभालना आवश्यक

भो णाणी भद्दो! सगभावं संभालेज्ज चक्कि-णिहीव।
जदि मुंचंति सुभावं, तो होज्ज जीवा पहभट्टा॥213॥

अहो ज्ञानी, भद्र जीव! चक्रवर्ती की निधि के समान अपने भावों को सम्भालो। यदि जीव शुभ भाव को छोड़ देते हैं तो पथभ्रष्ट होते हैं।

ममत्व भाव संसार का हेतु

परदव्वादु ममत्तं, पजहिय धरमि णिम्ममत्तं भावं।
णिम्ममत्तं सहावो, ममत्त-भावो दु भवहेदू॥214॥

परद्रव्य से ममत्व भाव का त्यागकर निर्ममत्व भाव को मैं धारण करता हूँ। निर्ममत्व जीव का स्वभाव है जबकि ममत्वभाव संसार का कारण है।

शुभ भावों की भावना

जं भावं भावेज्जा, अणादीदो मिच्छत्ताइ-वसेण।
अभावित्तु तं अज्जं, सम्मत्तादि-सुहभावं हं॥215॥

मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर जो भाव आज तक भाए उनको ना भाकर सम्यक्त्वादि शुभभावों को अब मैं भाता हूँ।

भावों को सम्भालना

विअट्टदि सग-वदादो, जो सो पढमं सग-सुह-भावादो।
अणंतरं दव्वादो, तं सगभावं संभालेज्ज॥216॥

जो जीव अपने व्रतों से स्खलित होता है वह सबसे पहले अपने शुभभावों से स्खलित होता है अनन्तर द्रव्य रूप से स्खलित होता है। अतः अपने भावों को सम्भालना चाहिए।

विशुद्ध चित्त का ही कल्याण सम्भव

सया विसुद्धचित्तस्स, कल्लाणं संभवो अइरं किण्णु।
बगोव्व असुहचित्तस्स, णेव कया वि कत्थवि कहं वि॥217॥

विशुद्ध चित्त का कल्याण शीघ्र सम्भव है किन्तु बगुले के समान अशुभ चित्त का कल्याण कहीं भी, कैसे भी, कदापि सम्भव नहीं है।

भावों की प्रधानता

सुफलेदि वडबीअं व, भावसहिदं अप्पपुण्णकज्जं पि।
संसार-सव्व-सोक्खं, देदि वरणिव्वाणसोक्खं पि॥218॥

भाव सहित अल्प पुण्य कार्य भी वटबीज के समान फलित होता है। वह संसार के सभी सुखों को और उत्कृष्ट निर्वाण सुख को भी देता है।

एक ही निमित्त से भिन्न-भिन्न भाव

पणंगण-मिदसरीरं, पस्सिय साण-कामि-सावय-मुणीहि।
विहिण्ण-परिणामेहिं, पाविदा दु भिण्ण-भिण्ण-गदी॥219॥

वेश्या के मृत शरीर को देखकर श्वान, कामी, श्रावक व मुनि के भिन्न-भिन्न परिणाम हुए एवं सभी ने भिन्न-भिन्न गति को प्राप्त किया।

विशेषार्थ–किसी नगर के श्मशान में वेश्या का मृत शरीर पड़ा हुआ था। उसके आस-पास उस समय कुछ लोग खड़े हुए थे, तभी वहाँ से एक श्वान निकला। वेश्या की मृत देह को देखकर श्वान के मन में विचार आया कि यदि लोग यहाँ ना होते तो मैं इसका भक्षण कर लेता। तभी एक कामी व्यक्ति भी वहाँ से गुजरा और उसके मन में विचार आया कि यदि ये जीवित होती तो मैं इसके साथ काम सेवन करता, वहाँ से जा रहे श्रावक के मन में विचार आया अहो! अहो! यदि ये अपने शरीर का सदुपयोग करती तो इसकी दुर्गति न होती और तभी वहाँ से गुजरते हुए मुनिराज वैराग्य से ओतप्रोत हो ध्यान में बैठ गए। चारों ने क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य व देवायु का बन्ध किया। इस प्रकार एक ही निमित्त को पाकर चारों ने भिन्न-भिन्न गति को प्राप्त किया।

अरे वराको सुहं च, असुहभाव-मजाणंतो अज्जेदि।
दुहं तं भावसारं, जाणित्तु करेज्ज सुहभावं।।220।।

अरे वराक (बेचारा)! शुभ व अशुभ भाव को न जानते हुए दुख का अर्जन करता है। अतः 'भावसार' को जानकर शुभभाव करो।

ग्रन्थ-माहात्म्य

पढदे सुणदे चिंतदि, जो भव्वो णियभाव-विसोहीए।
सो भावी परमप्पा, लहेज्ज मुत्ति-मप्पयालम्मि।।221।।

जो भव्य अपने भावों की विशुद्धिपूर्वक ग्रन्थ पढ़ता है, सुनता है, चिन्तन करता है वह भावी परमात्मा अल्पकाल में मुक्ति को प्राप्त करता है।

ग्रन्थकार की लघुता

सगभावविसोहीए, वसुणंदि-सूरिणा मइ गुरुकिवाइ।
लिहिदो दु भाव-सारो, सुद्धरयणत्तयी सोधंतु।।222।।

अपने भावों की विशुद्धि के लिए गुरुदेव की कृपादृष्टि से मेरे आचार्य वसुनंदी के द्वारा 'भावसारो' नामक ग्रन्थ लिखा गया। यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो शुद्ध रत्नत्रयधारी मुनिवर इसे संशोधित करें।

अन्तिम मङ्गलाचरण

सूरिं संतिसायरं, पायसिंधुं च जयकित्तिं सूरिं।
भारदगोरवं देस-भूसणं आइरियं णमामि।।223।।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

रट्ठसंतं सिद्धंतचक्कि-माइरिय-विज्जाणंद-गुरुं।
मज्झ परम-उवयारिं, णमंसामि भावविसोहीइ॥224॥

राष्ट्र सन्त, सिद्धान्तचक्रवर्ती, मेरे परम उपकारी आचार्य श्री विद्यानन्द जी गुरुदेव को मैं भावविशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

सीयलत्तं णीरम्मि, चेयणा जीवे उण्हत्त-मणले।
जावदु तावदु गंथो, इमो विज्जेदु विसोहीए॥225॥

जब तक जल में शीतलता, जीव में चेतना, अग्नि में ऊष्णता है तब तक विशुद्धि का हेतु यह ग्रन्थ सदा विद्यमान रहे।

संवर-णिज्जर-हेदू, परम्पराए मुत्तीइ वि गंथो।
रइदो भव्वाण अट्ठ-वीसुत्तर-बेसद-गाहासु॥226॥

दो सौ अट्ठाईस गाथाओं में रचित यह ग्रन्थ भव्यों के संवर व निर्जरा का हेतु है एवं परम्परा से मुक्ति का भी हेतु है।

ग्रन्थ-प्रशस्ति

बालोव्व लहुबुद्धीइ, विसयकसाय-वंचणट्ठं लिहिदो।
सुदकिड्डं कुव्वंतो, भावविसोहीइ गंथमिदं॥227॥

विषय-कषाय की वञ्चना के लिए श्रुत क्रीड़ा करते हुए बालक के समान लघुबुद्धि से भाव विशुद्धिपूर्वक यह ग्रन्थ लिखा गया।

ख-परमेट्ठि-अत्थिकाय-चेयणा-वीरणिव्वाणद्धम्मि दु।
पुण्णाहे पुण्ण-इमो, जंबूसामि-तवत्थलीए॥228॥

आकाश (0) परमेष्ठी (5) अस्तिकाय (5) चेयणा (2) 'अङ्कानां वामतो गति' से 2550 वीर निर्वाण सम्वत् में यह ग्रन्थ शुभ दिन में जम्बूस्वामी तपोस्थली में पूर्ण हुआ।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	6.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
7.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	8.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)	10.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
11.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)	12.	तच्चसारो (तत्त्व सार)
13.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)	14.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
15.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)	16.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)
17.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)	18.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
19.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)	20.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
21.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)	22.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
23.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)	24.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
25.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)	26.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
27.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)	28.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
29.	को विवेगी (विवेकी कौन)	30.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
31.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	32.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)
33.	धम्मस्स सुत्ति संगहो	34.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
35.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)	36.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
37.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)	40.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)
41.	समणभावो (श्रमण भाव)	42.	झाणसारो (ध्यानसार)
43.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)	44.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)
45.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	46.	पसमभावो (प्रशम भाव)
47.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)	48.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)
49.	विणयसारो (विनय सार)	50.	तव-सारो (तप सार)
51.	भाव-सारो (भाव सार)	52.	दाण-सारो (दान सार)
53.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	54.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
55.	णाण-सारो (ज्ञान सार)	56.	णीदि-सारो (नीति सार)

57.	आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)	58.	दंसण-परिक्खा (दर्शन परीक्षा)
59.	महाणुभावो (महानुभाव)	60.	उववासो (उपवास)
61.	संजम-सारो (संयमसार)	62.	सम्मत्त-सारो (सम्यक्त्व सार)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)
5.	श्रावकधर्म-संहिता (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)		

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष

41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्‌गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान

17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य			
1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य
1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक

4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		

परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कृत

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं

हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।

अणेगंतमयं सिआवायमयं

णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।

जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं

भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।

बारस-अंगेहिं संजुत्तं

लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।

कंठादिवचोकारणरहिदं

तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।

जगमंगल्लं जगकल्लाणिं

पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।